—।।— श्री परमात्मने नमः —।।—

पानप बोध

(श्री पानपदास जी की संक्षिप्त वाणी)

संक्षेपक व प्रकाशकः—

चन्द्रप्रकाश, बी० ए०

नई मंडी, मुजफ्फरनगर।

DBA000013293HIN

प्रथम संस्करण] [सम्वत् २०१८ वि०

National Library
Calcutta.
DELIVERY OF BOOKS
ACT, 1954.
25 MAY 1961

H
891 4316
P 277

धन धन दयाल मेरे दीन-बन्धु, तुम करुणामयी सर्व के दिहंद ॥टेक
तुम अन्तरयामी जान-राय, प्रभु काह राखूं तुम से दुराय ।
तुम सर्व-पालन देवा-देव, प्रभु मैं मलीन जानो नही सेव ॥
जित कित प्रभु जी मैं देखूं तोय, मोहि दीखे नही और कोय ।
तुम ही देखो मेरे देखनहार, मैं क्या देख सकूं मेरी मति गवार ॥
मछली तड़फे बिछड़े नीर, ऐसे तुम बिसरे मोहि व्यापे पीर ।
मछली जीवे नीर पाये, तेरा जन जीवे दरसन समाये ॥

NATIONAL LIBRARY
No 13293
DATE 4-12-62
CALCUTTA

॥ विषय-सूची ॥

॥ भूल सुधार ॥

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	३	कूड़	कूढ़
७	६	सहाब	साहब
,,	१२	दसन	दरसन
१०	११	अननत	अनन्त
११	१४	रंकारा	ररंकारा
१६	१२	सांपा	सांसा
,,	१२	मोई	सोई
,,	१३	पारसी	पारखी
१६	७	समुन्द्र	समुद्र
,,	१७	प्राप्यं	प्राप्य
,,	२१	आसाक्ति	आसक्ति
२०	२२	Rality	Reality
२१	१०	साघु	साधु
२३	१५	आराघं	आराधं
,,	१५	लौलनितं	लौलीनतं
२४	१५	अद्वितीय	अद्वैत
,,	२२	आरान्धते	आराधनं
२६	५	affter	after
३१	१२	पन्तु	परन्तु
३२	४	दुत्या	दुतिया
,,	४	कूड़नं	कूढ़नं
३७	७	सतगु	सतगुरु
,,	६	सूरत	सुरत
४३	१६	विसतार	विस्तार
४८	१	दयालू	दयालु
,,	१५	आत्मुथान	आत्मोथान
,,	१६	लौलनि	लौलीन
५३	१	भोजल	भवजल
५६	१५	बसवै	बसावै
६३	१८	हड़ा	पड़ा
६४	२२	सोय	कोय
६७	१२	घुग	धृग
६७	१४	अरकुटी	त्रकुटी
६६	शीर्षक	सत्संग	सुरत
७०	७	सिंभारा	सिंभाला
८८	४	याको	ताको
,,	२६	चमक	निश्चय
८९	६	पर जरी	परजरी[४]
,,	२६	—	४=जलना
९२	१४	विघ	विधि
९३	१०	पानदास	पानपदास
९४	४	मूरखता को	मूरख ताको
९६	८	ख्याला	ख्याल
,,९	५	बेली[५]	बेली
,,	१५	विरछ	विरछ[५]
१००	७	सहस्त्र	सहस्र
१०४	८	कषर्ण	कर्षण
१०५	१५	सुमरे	सुमेरु
१०६	२३	सनमुख	सन्मुख
१०८	१७	मैदनान	मैदान
१०६	६	इद्रि	इन्द्रि
११०	१२	पलक न	पलक पलक न
१११	शीर्षक	दर्शन	प्रेम
१३२	२	व्याभे	व्यापे
१३५	६	पांई	पाई
,,	११	पथर	पत्थर
१४०	१३	नानप	पानप
१४६	१	साहुकार	साहूकार
,,	११	लगी	पैंठ लगी
१४८	१६	मुमरन	सुमरन
१५६	१८	द्दष्ति	दृष्टि
१६१	१	घुनि	धूनि
१६४	६	मनसूं	मरनसू

'भूल सुधार'

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ख	२०	अ वद्या	अविद्या	३३	१३	क्येंकि	क्योंकि
ग	६	संसर	संसार	३६	१८	जिनका	जिनकी
ङ	२६	आज्ञनुसार	आज्ञानुसार	३७	२	देव	देवै
च	६	ाज	निज	४०	११	हाय	होय
	१६	जानाया	जानिया		१३	गुरु का का	गुरु का
	२६	बाल	बोले	४१	८	एसो	ऐसो
छ	१६	चुगे	चुगें	४२	१३	एसी	ऐसी
	,,	लागे	लागें	४७	४	पछताय	पछताये
	२६	भ्रष्ट	भ्रष्ट		१५	अनभव	अनुभव
ज	६	ऊबता	उबता	४६	६	संगन	संगत
	२८	दि०	दिव्य	५३	७	रगं	रंग
ञ	१२	हितेषि	हितैषि	५५	१६	गगा	गंगा
	१६	लोटे	लौटे	५७	१२	पाव	पावै
१	३	है	हैं	६५	१८	वंस	बंस
	११	हा	हो	७०	२	ोई	कोई
	१३	कूढ	कूढ़	६७	११	कहा	कहो
	१७	जाऊ	जाऊँ		१६	जेसी	जैसी
२	११	माँगू	माँगूं	१०२	७	बांसरी हो भीनी	बांसरी हो
४	१२	तांकू	ताकूँ		१५	नेना	नैना
६	२	गाँऊँ	गाऊँ	११०	८	पवित	पीवत
७	६	उधरे	उघरे	१११	१५	चेन	चैन
६	२३	मानु।	मानुष		१८	पेढ़ें	पढ़े
१०	१६	ठोड़	ठौड़	११२	१५	ओर	और
	,,	कही	कहीं	११६	२३	ससार	संसार
१२	१०	वृतियें	वृत्तियों	११८	४	चौक	चौके
	११	चलाय	चलाये	१२१	१४	मुक्ती	मुक्ति
१३	४	चहुंदि सा	चहुंदिसा	१२४	१६	भकति	भक्ति
	१७	एसी	ऐसी		,,	आयू	आयु
	१६	च वंर	चवंर	१३६	२७	पेर	पैर
१५	५	तूर	तूर	१३८	४	ओर	और
	१२	एसी	ऐसी	१४६	१४	हिन्दु	हिन्दू
१६	११	अधिका	अधिकारी	१६१	२२	चर्ण	चरण
	१६	कर	करे				
१६	११	का	को				
२६	१	आकारा	आकारो				

परमहंस ब्रह्म ज्ञानी महात्मा पानप दास जी
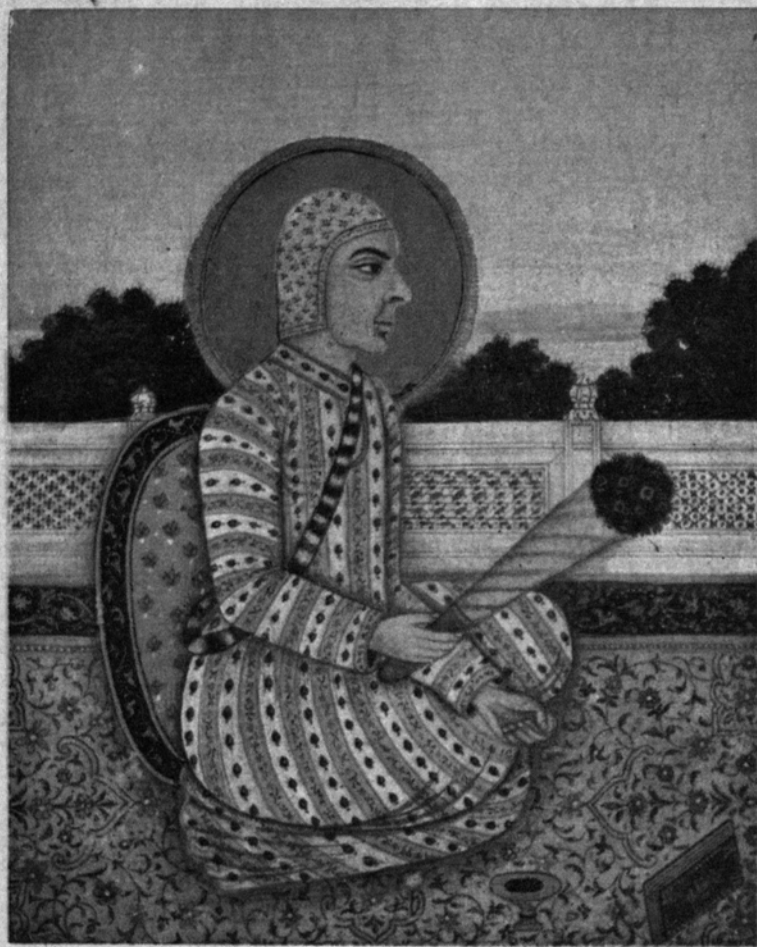
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व दीन्हा !
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा !!
श्री गुरु के चरणार बंदं नमस्कारं नमस्कारं

★ निवेदन ★

संतों की गूढ़ अनुभवी वाणी का अनुवाद केवल ज्ञानी भक्तजन ही कर सकते हैं। मुझ में वाणी को समझने की न योग्यता है और न मैं लेखक हूँ। मैंने एक वाटिका से जो अनेक सुन्दर सुगन्धित सुमनों से सुशोभित है, कुछ पुष्पों को चुन कर माला गूंथी है। इस वाटिका के सब कुसुम हृदय को लुभाने वाले, मन को मुग्ध करने वाले एवं सभी में असीम आकर्षण है उनमें से चुनाव करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पुष्पों की सुगन्ध व छबि से प्रभावित होकर यह "पानप बोध" रूपी माला इस कारण से बनाई गई हैं कि योग्य पुरुष व भक्त-जन इस पुष्पोद्यान का अवलोकन करें और इसका यथार्थ वर्णन करके सन्सार का कल्याण करें।

संतों के मार्ग का अनुकरण किये बिना उनकी वाणी के रहस्य का कथन सम्भव नहीं है जैसे फल को बिना चाखे उसके स्वाद का वर्णन नहीं हो सकता "कहै पानप कुछ स्वाद न जाने मिथ्या भाषै लोय" परन्तु स्वर्गीय महंत श्री दयाप्रकाश जी का आदेश इस संक्षिप्त वाणी को छपवाने का था। उनकी आज्ञा पालन के रूप में यह प्रयास श्री गुरु महाराज के चरणों में नमस्कार सहित अर्पण है। पाठकगण त्रुटियों के लिये क्षमा करें :—

मेरा मोको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तोको सोंपते, क्या लागत है मोर॥

श्री गुरु के चरणाविंदम् नमस्कारं नमस्कारं॥

चन्द्र प्रकाश, बी० ए०,
१०७ बी, नई मंडी,
मुजफ्फरनगर।

● भूमिका ●

संत भारत की अमूल्य निधि हैं वह संसार को प्रेम व ज्ञान के पाठ से स्वर्ग बनाते हैं। संत मानव के प्राण हैं और जीव की आध्यात्मिक पिपासा को तृप्त करने के हेतु समय समय पर प्रगट होते हैं। इनके नियम व उपचारों का पालन करने से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है। संत निर्भय, दयालु, जितेन्द्रिय, प्रसन्न-चित्त, निष्काम, निर्लिप्त, शान्त, स्थिर, योग-युक्त, द्वन्द्व-रहित, दृढ़-प्रज्ञ, नम्र, आत्म-संतुष्ट, व भगवत्-परायण होते हैं। इनके सत्संग से प्रभु में श्रद्धा व प्रेम की वृद्धि होती है।

ऐसे महान् पुरुषों की स्मृति से अन्तःकरण शुद्ध व निर्मल बनता है। मन में स्थिरता आती है। हृदय में सुख व शान्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस कारण से पूज्य गुरुदेव परम हंस ब्रह्म ज्ञानी महात्मा पानपदास जी की गूढ़ वाणी की चर्चा करने का साहस मुझ अयोग्य, विद्या एवं साधन हीन को हुआ है।

श्री पानपदास जी की वाणी महात्मा कबीरदास जी की वाणी से मिलती जुलती है। दोनों संत एक स्वर में बोलते प्रतीत होते हैं मानों दोनों का मार्ग और अनुभव एक ही है। पानपदास जी ने स्वयं न कुछ लिखा और न लिखाया। वह तो सत्संग के अवसर पर परमार्थ-हित अपने अनुभवों का प्रचार किया करते थे। सत्संगी-जन आपके वचनों को लिखते रहते थे। उन लेखों के एकत्रित हो जाने से एक विशाल ग्रन्थ बन गया है। 'नाम स्तोत्र', 'ज्ञान सुखमनि', 'नाम लीला' 'गगन डोरी', 'प्रेम रत्नी', 'सोहला' आदि अंगों में यह ग्रन्थ बाद को विभाजित किया गया है। ज्ञान, प्रेम व भक्तिभाव की छलकती हुई सुन्दर मधुर लहरों से वाणी पूर्ण है। अमृत रूपी विवेक और विचार आत्म-ज्ञान की ओर ले जाते हैं। जीव जो अविद्या के कारण अपने को अल्पज्ञ व बद्ध मान बैठा है इस ज्ञान दर्पण में अपना वास्तविक स्वरूप देखता है और जीव को ज्ञात हो जाता है "जो जन चीन्हे आतमा सचा दर्शन सोय" श्री पानपदास जी के मुख्य उपदेश हैं:—

सतगुरु से दीक्षा लेकर उनके आदेशानुसार जीवन यापन करना, संसार में कँवल की भांति अलिप्त रहना, सब की सेवा करना, सम-दृष्टि रखना, भगवत् प्राप्ति, के लिए निष्काम भाव से कर्म करना, शील, क्षमा चित्त में रखना, निर्भय होना, सन्तोष, विवेक, दीनता धारण करना, भोग, विलास, काम, क्रोध, लोभ, मोह का त्याग करना, अन्य के भ्रम में न पड़ कर एक हरि से प्रेम करना, मन का निग्रह करना, सुरत द्वारा नाम जपना, त्रिकुटी में ध्यान लगाना, दसवें द्वार में समाना, सत्य लोक में प्रवेश करना और ब्रह्म में लीन हो जाना।

इन उपदेशों का रहस्य ही पानपदास जी की आत्म-कथा है। उनका जगत के नाशवान बाह्य रूप के प्रति दृढ़ वैराग्य है। उनकी भावना है कि यह संसार एक सराय है जहाँ "रैन बसे ये आय के, उठ चलना प्रभात"। यहां रहना नहीं है "यहां रहने को साज बनावे मन, जहां कोई रहन न पाया", फिर यहां पैर पसारना, रुचि मानना भूल है। "जो सुपने को तू देख लुभाया, तेरी यह शोभा दिन चार"; संसार जिसमें हमारा अपार आकर्षण है केवल चार दिन की शोभा है इसके सब ही पदार्थ क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, मृत्यु के समय साथ कुछ नहीं जाता, "टूटि अवधि हुकम आया लेन, छोड़ चला सब माया"।

यह शरीर जिसको हम अपना समझते हैं यह भी साथ नहीं जाता। जहां इस में से बोलता पंछी उड़ा, कि यह मिट्टी का लोथड़ा शीघ्र से शीघ्र कुटुम्बी जनों द्वारा भस्म कर दिया जाता है। पर पानपदास इस असार संसार से परास्त नहीं हुये। माया उनको अपने जाल में नहीं फंसा सकी। उन्होंने वास विहीन वासा किया "जल में कमल रहे नित ऊंचा, जग में संत रहे यूं सूंचा"। इस भांति निर्लिप्त, निर्मोही रहकर उन्होंने इस तन में ही एक स्थिर, थीर स्थान पाया, अन्तर में अपनी वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार किया और आनन्द व शान्ति पाई। इसी नाशवान संसार में जो है तो हरि का रूप और हरि से ओत-प्रोत, धुंध के परे "घूंघट का पट खोल सुरतसूं, पिया की मूरत लई पहचान"। फिर क्या था फिर तो उस माधुरी मूरत ने मन को अपने वशीभूत कर लिया।

"जबसूं सखी लखी वह मूरत, मानो टोना सा कर दीनो री।
वा मूरत में अनगिन पुतली, जित देखूं तित् दरसन कीनो री"॥

अब प्रेमी यह नहीं सह सकता कि उसका प्रेम-पात्र एक क्षण के लिये भी उससे पृथक रहे। जब परमात्ममिलन का आनन्द प्राप्त हो जाता है तो हृदय उसी में मस्त हो जाता है। "मीन जल से बिछुड़े, तड़फ तड़फ सहज मरजाये" यह गति भक्त की भगवान के प्रति होती है। वह शीस उतार कर प्रेम की खिड़की में घुस कर अगम महल में प्रियतम को प्राप्त करता है फिर वह सजना से जुदाई कैसे सहन कर सकता है। यह दृढ़ अनुराग ही भगवान की पूर्ण शरणागति है। यही आवागमन से छुटकारा है। यही मनुष्य जन्म का जो बड़े भाग्य से मिलता है चरम लक्ष्य है, यही मानुष देह की शोभा और गौरव है:—

पति की सेवा कीजिये, सब जग में पत होय।
फल लागे तासूं मुक्ति सों, करे उपमा सब कोय॥

चन्द्रप्रकाश, बी० ए०
मुजफ्फरनगर।

जीवन चरित्र

भारतवर्ष का सौभाग्य है कि मानव समाज को जिस समय जैसे साधनों की आवश्यकता हुई, उसी के अनुसार महा-पुरुषों ने अवतीर्ण होकर जीवो को चेताया। इसी लक्ष्य को लेकर सम्वत् १७७६ तदनुसार सन् १७२० ई० में ब्रह्मवेता, आत्मज्ञानी परमहंस श्री पानपदास जी प्रगट हुए। भारतवर्ष में तब मुहम्मदशाह का राज्य था। उस समय की धार्मिक दशा का वर्णन श्री पानपदास के शब्दों में इस प्रकार है—

हिन्दू का मत कहूँ वेद चारों पढ़ें, पढ़ें हैं भागवत और गीता।
राम घट में रमा प्रगट स्थान है, भूल रहे भरम में नहीं खोज कीता॥
पंडित पढ़ पढ़ पुस्तक पोथी, राम नाम बिसराना है।
काजी मुल्ला पढ़ें कुराना, दिल की याद भुलाना है॥
एक भेष बनाय भए बैरागी; मन बैराग्य फिरे ताहि त्यागी।
पाथर पूजे मन सिहावे, तन संजम करता नहीं पावे॥
एक जटा बढ़ाए भए सन्यासी, जप तप भरम में काया तरासी।
सर्व सन्यास करे जन सूरा, दूलमल मन पद परसत पूरा॥
एक जैनी मन पाषान लगावे; दया धर्म बिन मूल गंवावे।
दया कहैं हृदय नहीं करना, दया धर्म बिन भवजल पड़ना॥
भूल रही दुनिया सगरी, तज आत्म-राम पाषान पुजावे।
फेर नहीं मन को पलेक, कर में ले काठ की माल फिरावे॥

पानपदास जी ने देखा कि अधिकतर लोगों ने बाह्य उपचारों का ढोंग बना रखा है। दया धर्म के नाम पर छल छिद्र फैला हुआ है। अतः आपने हिन्दू, मुसलमान, जैन, सिख, सन्यासी, साधु-सबको रूढियों में न फंसने का आदेश दिया है। आप तेजस्वी, निर्भीक व अनुभवी संत थे।

संत शब्द साधारणतः साधु, महात्मा, विरक्त के अर्थ में आता है, किन्तु संत एक विशाल-हृदय, जीवन-मुक्त, ब्रह्म-ज्ञानी, महापुरुष हैं, जो दया, प्रेम, भक्ति भावों से जीवों का उद्धार करते है और संसार मे कंवल की भाँति निर्लिप्त व राग-रहित बनकर रहते हैं। वह परमपद (सत्यलोक) को प्राप्त किये होते हैं।

सुगम है साध कहावना, कठिन संत की चाल।
पांच बांध पानप कहैं; गगन चढ़े तत्काल॥
सत्यलोक अमरापुर नगरी, जहां संत कियो बासा।
सफल निरन्तर कहै जन पानप, सांचे चरण निवासा॥

श्री पानपदास जी का जन्म 'बीरबल' के कुल में हुआ था। जाति विचार से आप भट्ट थे, आपके माता पिता निर्धन थे। दुर्भिक्ष के कारण एक दिन शिशु पानपदास को लेकर वह लोग जंगल को निकले और उनको एक वृक्ष के नीचे सुलाकर कन्द मूल की खोज में दूर चले गए। अकस्मात वहां एक तृषित आ पहुंचा। वह सन्तान हीन था, बच्चे की दिव्य आभा से आकर्षित होकर उसने बालक को गोद में उठा लिया और भगवान की ओर से वांछित फल पाकर अति प्रसन्न हुआ। हर्षित मन हुआ बालक को घर पर लाया और प्रेम पूर्वक पालन पोषण करने लगा। पति पत्नी दोनों ने अपने भाग्य की सराहना की। तब से उनके घर में सर्व-प्रकार का आनन्द मंगल छा गया। यह लोग राजगीरी का काम करते थे।

पानपदास जी ने इस परिवार मे पलकर कुछ समय लिखना पढ़ना सीखा। फिर शिल्प विद्या सीखी और तेरह चौदह वर्ष की अवस्था से राजगीरी का काम करने लगे परन्तु 'होनहार बिरवे के चिकने चिकने पात' आपको संसार में उच्च कोटि का संत बनना था और भूले भटके जीवों का कल्याण करना था, सो ऐसा ही हुआ। आप पूर्ण संस्कारी जीव थे, जन्म से ही हरि भक्त थे। अधिक समय एकान्त वास एवं ध्यान में व्यतीत करते थे। एक दिन एक 'कबीर पंथी' साधु ने आपको आत्म ज्ञानी परमहंस महात्मा 'मग्नीराम' जी का परिचय दिया। पानपदास जी के हृदय में मग्नीराम जी के दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वह तुरन्त 'तिजौरे' रियासत अलवर महात्मा मग्नीराम जी की सेवा में जा पहुंचे।

श्री मग्नीराम जी 'भूराज' नामी भडभूंजा के मकान पर एक कोठरी में रहते थे। आप का जैसा नाम वैसे ही गुण। आप सदैव मग्न एवं मालिक की याद में लौलीन रहते थे। अपना जीवन गुप्त व्यतीत करने के कारण उन्मत् का रूप धारण किये थे। नेत्रों की ज्योति अग्नि के सदृष थी। साधारण पुरुष आपके निकट जाने का साहस नहीं कर सकता था। परन्तु हीरा जौहरी से नहीं छिपसकता। पानपदास जी की गुरु-भक्ति ने मग्नीराम जी को अपना लिया। आरम्भ में पानपदास जी की कठिन परीक्षा ली गई। बहुत डराया डांटा और भयभीत किया गया। प्रेम पंथ बहुत कठिन मार्ग है सिरका सौदा है "पानप चाहे प्रेम को, तो सीस उतार धरो" पतंग दीपशिखा के पर फड़ाने से डरता नहीं है क्योंकि वह तो आता ही जलने के लिये है। अतः पानपदास जी अपनी परीक्षा में सफल हुए, गुरुदीक्षा प्राप्त करली और गुरु सेवा में लग गए फिर गुरु की आज्ञानुसार अपने घर पर लौट आए।

कुछ समय घर पर माता पिता के संग रह कर उनको सुख पहुंचाते रहे पर वहां मन नहीं लगा, एकांत वास की इच्छा हुई और ग्राम से बहुत दूर जंगल में समाधी लगाकर बैठ गए, सिढ़ी जैसी रूप रेखा बनाली, खाने की चाह न पानी की प्यास। संसार के सब बन्धन तोड़ कर एक गुरु से नाता जोड़ लिया। 'जब अंतर में गुरु का वास है तो बाहर भी गुरु मिले ? इसी धारना की पूर्ति में लग गए। गुरु मिलन की लगन इतनी प्रचंड बन गई कि प्रमिका (माशूक) को प्रेमी (आशिक) बनना पड़ा मग्नीराम जी खिंचे चले आये और चेले के निकट आकर उसमें घुल मिल गए.–"महबुब और आशिक मिल के, दूजा मिट गया एक रहा" एक के साधे सब सध जाते हैं ससार में फिर कार्य कुछ नही रह जाता। जीवन में पूर्ण सफलता आ जाती है। कबीरदास जी के शब्दो में:—

"जो एक ना जानाया, तो बहु जाने क्या होय।
एक से सब होत हैं, सबसे एक न होय॥
सब आयें उस एक में, डाल पात और फूल।
अब लेने को क्या रहा, गह पकड़ा जब मूल॥"

इस प्रकार पानपदास जी को पूर्ण गुरु कृपा प्राप्त हो गई अथवा भगवान की प्राप्ति हो गई "गुरु परमेश्वर एको जान" श्री मग्नीराम जी अपने स्थान को लौट गये और पानपदास जी ने मौन धारन कर लिया वह गुप्त रीति से विचरते हुए 'धामपुर' (जिला बिजनौर) आ पहुंचे। यहां एक साहूकार का मकान बन रहा था आप भी उस मकान में चिनाई करने लगे। एक ब्रह्मवेत्ता एक दिन वहां आये और पानपदास जी को चिनाई करते देख कर कुछ सकेत किया, जिसका उत्तर पानपदास जी ने यह दिया:--

त्रिकोनी गुनिया दौडावै, महल साध के ठीक करै।
नाम धुनि की बिसोली लगावै, ज्ञान ध्यान की ईंट धरै॥

ब्रह्मवेता जी के पूछने पर आपने अपना नाम पानप बतलाया और पानप शब्द की व्याख्या यह की कि 'पानप सोई जो पी-प्रण गहै, पी को छाड़ और नहीं कहै'। फिर मुस्करा कर बाले:—

गगन मंडल में बाट चलावै; ईंटे नाहिं घडता है।
दुनिया को बैठा सुलझावै, यमसूं नाहिं डरता है॥
गुरु के ज्ञान रैन और बासार, चंचल मन पकडता है।
भवसागर को नाम के ओरे, बिन नौका पार उतरता है॥

इन मार्मिक शब्दों को सुन कर ब्रह्मवेता जी प्रसन्न हुये और कहा, 'आप 'गुदड़ी में लाल हैं' अब आप प्रगट होकर अपने उपदेशों से जीवों का कल्याण करें।

पानपदास जी फिर गुरु सेवा में लौट गये और वहां सत्संग करने लगे। सत्संग आत्म उन्नति के लिये अति आवश्यक है। गुरु के संग से भगवत्-नाम में प्रतीति बढ़ती है "संत मिले पानप कहै, तब लागे नाम सूं रंग"। जीव सत्संग और सतगुरु के बिना पास में अमूल्य रत्न रहने पर भी दरिद्र की भांति दुखः उठाता है जैसे नाभि मे कस्तूरी रहते हुए भी मृग बन बन ढूंढता डोलता है। सतसंग मिलने पर सब संशय दूर हो जाते हैं। हृदय निर्मल बन जाता है और परमात्मा में प्रेम उत्पन्न होता है।

गुरु मन्निराम जी से आशीर्वाद पाकर पानपदास जी देहली पधारे वहां एकान्त में साधना करने लग गये। आपके अभ्यास की रीति युक्ति का वर्णन इस प्रकार है:—

शब्द मुरशिद दिया प्रेम प्याला पिया, भया मन मस्त तन गश्त दीनी।
पांच पचीसों का मूल एक पवन है, बांध सत् संध घर रमन कीनी॥
नाभि की नाल में ख्याल एक अजब है, दन्ड सूधा किये वस्तु चीन्ही
पानपदास कहै द्वार दसवें रहै, जीवित मुक्त लहै सिफ्त कीन्ही॥
झिरे अमृत कनी पीव तजकर मनी; होय मन मग्न तन अमल छावे।
राम के रंग में तन राचा रहै, अचल होय मन नहीं चलन पावे॥
मेरू को फेर सुमेर ऊपर धरै, खुले दल अष्ट जब दरस पावे।
दास पानप कहै शब्द-धुन रच रहै, सुरत को फेर उस घर समावे॥
हंस सूं हंस मिल केलि करैं, केलि कर ममत को नीर त्यागें।
दास पानप कहै हंस मुक्ता चुगे, सरोवर मान के तीर लागे॥

कुछ समय बाद पानपदास जी ने देहली में सत्संग का आरम्भ किया। वहां के नगरवासी सत्संग में सम्मलित होने लगे। सतसंगियों को आप मे श्रद्धा हो गई। एक सतसंग भवन का निर्माण किया गया जो इस समय भी बहादुरगढ रोड पर माहवीर गली में स्थित है। इस भवन में साधु रहते हैं और वाणी का नित्य पाठ करते हैं। आपके हृदय में ऊंच नीच तथा जाति पांति का कुछ विचार न था। सब वर्णों के लोग सत्संग में भाग लेते थे।

ऊंच नीच कस्य कथित, पूर्ण ब्रह्म परि पूर्ण।
दुतिया भाव नरक गामी, ज्ञान हीनस्य कूदनं॥

ऊंच नीच, जाति पांति का विचार भ्रम है, वास्तविक शुद्धता व बड़ाई ब्रह्मज्ञान है। जिस मनुष्य में काम, क्रोध, राग द्वेष स्थित हैं वह भ्रष्ट है।

पानपदास जी ने भ्रष्ठ की व्याख्या करते हुये बतलाया है कि भ्रष्ट नर वह हैं जो जुआ खेलते हैं; संशय में रहते हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त हैं; जो चोर, पर-निन्दक, बुद्धिहीन, दगाबाज, अविश्वासी, अभिमानी, और मिथ्या-भाषी हैं; जो गांजा, भंग, तम्बाकू, मांस, अफ़ीमादि का सेवन करते हैं; जो पर नारी ताकते हैं; और ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं। किंचित बिरले मनुष्य ऐसे होंगे जो इस भ्रष्ट की परिभाषा में न आते हों ? कुल या वर्ण की ऊच्चता के कारण अपने को पवित्र व श्रेष्ठ मानना व्यर्थ का अभिमान है। हरिजन समाज हिन्दू जाति का बड़ा व मुख्य अंग है। हरिजनों को अछूत समझ कर इनका तिरस्कार करना अपने धर्म व शास्त्रों को कलंकित करना है। हरि के दरबार में जाति, पांति, ऊंच, नीच का भेदभाव नहीं है, जो प्रभु को भजते हैं वह प्रभु को प्रिय हैं:—

जात पात कुल नहीं विचारे, ऊंच नीच की संक न आनें।
जो जन हृदय नाम रटत हैं, प्रभु मेरा ताहि को मानें ।।

देहली से चलकर पानपदास जी धामपुर पधारे; यहाँ की जनता में साधुओं के प्रति श्रद्धा न थी इस कारण पानपदास जी फिर राजगीरी का काम करने लगे। संसार में सब ही काम श्रेष्ट हैं; जो कर्म लगन व सच्चाई से किया जाता है वही परमात्मा की पूजा बन जाता है।वहाँ एक साहूकार का मकान बन रहा था आप भी चिनाई करने लगे। आप काम तत्परता व लगन से करते थे इस कारण से दूसरे राज व कर्मचारी इनसे द्वेष मानते थे और उन लोगों ने जान बूझ कर मकान की दीवार टेढी करदी; दोषी ठहराया पानपदास जी को। सेठ जी पानपदास जी पर रुष्ट हुये और बुरा भला कहा। पानपदास जी ने इस अनुचित व्यवहार को सहन किया और कुछ सोच विचार कर टेढी दीवार पर हाथ रखा कि दीवार सब के देखते देखते सीधी हो गई। सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह लोग पानपदास जी के चरणों में गिरे। सेठ जी ने क्षमा मांगी और मकान को महाराज जी की भेंट कर दिया। यह मकान महल के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भेष के साधु रहते हैं और संप्रदाय की यह मुख्य गद्दी है।

भक्तों के जीवन में इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं का होना आश्चर्यजनक नहीं है। ऋद्धि सिद्धि संतों के चरणों की चेरी होती हैं। भगवान की भांति भक्तों के कर्म भी दिव्य होते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि चमत्कार रहित जीवन भक्त जीवन न हो। सर्वदा शुद्ध, लोक-हितकारी, प्रेममय जीवन ही भक्तों का आदरणीय चमत्कार है परन्तु ऐसी घटनाएं भक्तों के जीवन में स्वतः पाई जाती हैं:—

रिद्धि सिद्धि चार मुक्ति, ऐ हरि चरणों की चेरी।
वाके संग लागी ही डोलें पानप; जिन सुरत निरन्तर फेरी ।।

अब पानपदास जी की कीर्ति समस्त धामपुर नगर में फैल गई। सत्संग भली भांति चलने लगा परन्तु अधिकतर सत्संगी आत्म-जिज्ञासू न थे वह सांसारिक कामनायें लेकर आते थे सच्चे मुमुक्ष कम थे। एक दिन पानपदास जी घर से नगर की ओर चले। मार्ग में एक स्त्री मिली वह अति व्याकुल थी और रो रही थी उसकी गोद में एक छोटी कन्या थी। पानपदास जी ने उससे रोने का कारण पूछा स्त्री ने बताया कि उसके पति का स्वर्गवास हो गया है, कोई दूसरा आधार नही है। पानपदास जी को उस पर दया आई उन्होंने बच्ची को गोद में ले लिया और 'बुद्धन' नामक स्त्री को संग ले जाकर महल में ठहरा दिया। चारों ओर चर्चा फैल गई कि पानपदास ने घर में स्त्री रखली है। फलस्वरुप झूठी श्रद्धा वाले पुरुषों ने सत्संग में जाना बन्द कर दिया। केवल सच्ची निष्टा के लोग शेष रह गये। पानपदास जी चाहते भी यही थे और इसी कारण से उन्होंने यह लीला रची थी।

सत्संग में बिना भेद भाव के हिन्दू मुसलमान, छोटे बडे सब आते थे। संतों में भेद की भावना नहीं होती है, वह सब प्राणियों मे समदृष्टि रखते हैं:—

सर्व आत्मा एक सी, सब से कीजे मेल।
एक सूं मिले एक सूं ना मिले, इस दुरमति को पेल ।।

सत्संगी जनों में एक श्री नजीबुद्दौला थे वह देहली में मन्त्री पद पर रह चुके थे नजीबाबाद (जिला बिजनौर) के नवाब थे। एक दिन इनके मन मे पानपदास जी की सवारी के बैलों को प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हुई क्योंकि बैल स्वस्थ नागोरी वंशज व दर्शनीय प्रसिद्ध थे। संत सर्वज्ञ होते हैं। पानपदास जी ने स्वयं ही अपनी बैल जोडी नवाब साहब के यहां भिजवादी। श्री नजीबुद्दौला बहुत चकित व प्रभावित हुए और महाराज जी की सेवा में उपस्थित होकर बहुत कुछ द्रव्य व भूमी भेंट की। आपने धामपुर की थोडी सी भूमी स्वीकार करली इस भूमी में बाग लगा है और महाराज जी की समाधि बनी है। तब ही से पानपदास जी में नजीबुद्दौला की अटूट श्रद्धा व अनन्य भक्ति थी।

नजीबुद्दौला को आते जाते देखकर बहुत से किसान लोग भी पानपदास जी की सेवा में आने लगे उनमें से एक किसान 'बखत मल' 'रियासत हलदौर' का रहने वाला था महाराज जी का श्रद्धालु भक्त था। उसकी खेती का एक बैल अकस्मात् मर गया, निर्धन तो वह पहिले ही से था, बैल के मरने पर वह बहुत दुःखी हुआ और उदास रहने लगा। महाराज जी के पूछने पर उसने अपना वृत्तान्त सुनाया। महाराज जी ने उसको अपना एक बैल देकर आशीर्वाद दिया; तब से वह खेती में मालामाल हो गया; सुख सम्पत्ति घर में छा गई। एक पुत्र का जन्म हुआ; जिसको वह महाराज जी के चरणों में लाया। आपने बच्चे का नाम मानसिंह रखा और वरदान दिया कि यह बच्चा बड़ा होकर हलदौर का राजा "मानसिंह" के नाम से प्रसिद्ध होगा; वाक्य सफल हुआ वह परिवार अब तक इस पंथ में श्रद्धा रखता चला आ रहा है।

पानपदास जी की ख्याति अति विस्तृत हो गई। दूर दूर नगरों से भक्त जन सत्संग में आने लगे। एक साधु "जलालाबाद" (जिला मुजफ्फरनगर) में कहता घूम रहा था कि 'धामपुर' में "हीरे मोती की वर्षा हो रही है," जो चाहें लाभ उठावें ला० मनीराम जी ने साधु से उसका अभिप्राय पूछा। साधु ने बतलाया कि 'धामपुर' (जिला बिजनौर) में संत पानपदास प्रकट हुये हैं, उनके उपदेश अमृत समान हैं, लाला मनीराम जी श्रद्धालु व साधु भक्त थे वह तुरन्त पानपदास जी की सेवा में जा पहुँचे और वहीं रह कर सतसंग करने लगे। कहा जाता है कि पानपदास जी मनीराम जी की भक्ति मे प्रसन्न हुये और आशीर्वाद दिया कि उसकी शुभ सन्तान फूले फलेगी और सदैव आनन्द व सुखी रहेगी। संतों के बचन अमोघ होते हैं। तब से यह वंश प्रफुल्लित चला आरहा है और पानपदास जी में आस्था रखता है।

संसार का यह नियम है कि चाहे मनुष्य भला हो या बुरा उसके मित्र व शत्रु दोनों होते है। पानपदास जी सबके हितेषि थे, किसी से उनको द्वेष न था फिर भी कुछ लोग उनसे ईर्षा करते थे और शत्रु भाव रखते थे धामपुर के निकट ग्राम "मुकरपुरी" में "लोका" नामक एक जमीदार रहता था, जो पानपदास जी से विरोध रखता था। आप तो पवित्र गंगा के समान थे, जिसमें अनेक गन्दे नाले पड़ कर शुद्ध बन जाते हैं। आपके मन में लोका की ओर से द्वेष न था। एक दिन आपको 'मुकरपुरी' जाना था। साधुओं ने 'लोका' द्वारा उपद्रव के भय से महाराज जी को जाने से रोकना चाहा परन्तु संत निर्भीक होते हैं, उनके हृदय में सब के प्रति प्रेम होता है। आप "लोका" के मकान के सामने से गये तथा लोटे पर 'लोका' बोला तक नहीं। 'लोका' के साथियों ने उसको धिक्कारा कि पानपदास दो बार आ चुके है वह उनकी ओर आख भी नही उठा सका। इस पर "लोका" बहुत लज्जित हुआ और पानपदास जी के तेज से प्रभावित होकर उनकी शरण में गया, पानपदास जी ने उसको सकेत किया:—

"समझ चलो मेरे भाई 'लोका' समझ चलो मेरे भाई।
केवट बनकर संत पुकारें, नौका घाट लगाई ॥

एक 'मनसाराम' ब्राह्मण 'नगीना' निवासी था उसका विश्वास छूआछूत और ऊंच नीच में बहुत था इस कारण से वह पानपदास जी से बैर भाव रखता था और उनके आचरणों की निन्दा किया करता था एक दिन पंडित 'मनसाराम' पानपदास जी का तिरस्कार करने के लिए गुरुद्वारे गया। पानपदास जी ने इन शब्दों में उसका स्वागत किया:—

"निन्दक हमको लागे प्यारा, नित उठ धोवे मैल हमारा।
धोये मैल मेहनत नहीं मांगे, ऐसे निन्दक को कैसे त्यागे ॥

और उपदेश दिया:—

"बाहर कहां रे है घट भीतर, भरम भरम जन्म गंवायो रे
सुरत निरत ले खोजे अन्तर, ताहि पुरुष दरसायो रे।।

मनसाराम आपके मधुर बचनों से प्रभावित हुआ और चरण स्पर्श करके क्षमा चाही। शेष आयु सत्संग में बिता कर जन्म सफल बनाया। प्रसिद्ध है कि पंडित मनसाराम ने मृत्यु के पश्चात "बुद्धन" की पुत्री के गर्भ से पुनर्जन्म लिया था क्योंकि मनसाराम ने पानपदास जी से यह बरदान चाहा था कि वह सदैव उनके चरणों मे रहे। पानपदास जी को जब इस बच्चे के जन्म की सूचना मिली थी तो आपने कहा था कि यह लड़का मनसाराम मेरा भक्त 'नगीने' वाला है इसका नाम "मनसाराम" रखा जावे और इसको हलदौर की गद्दी का महंत बनाया जावे जिस आज्ञा का पालन किया गया था।

पानपदास जी ने अधिक समय धामपुर में ही व्यतीत किया। गुरुदेव मग्नीराम जी अन्तिम समय मे आपके पास रहने लगे थे। महात्मा मग्नीराम जी की आयु लगभग २०० वर्ष की बताई जाती है आपके प्राण ब्रह्मरन्ध्र द्वारा निकले थे। ऐसी मृत्यु किसी बिरले योगी को ही प्राप्य है। गुरुदेव की मृत्यु के पश्चात पानपदास जी ने भी सम्बत १८३० विक्रमी फाल्गुण कृष्णा सप्तमी को अपना चोला छोड़ दिया आपके मुख्य शिष्य थे–'काशीदास', 'मनसादास', 'चूहड़दास' और 'बुद्धिदास'। काशीदास जी एक वैरागी महन्त थे परन्तु संस्कार वश पानपदास जी की शरण ग्रहण की "हमारी माला का दाना था हमारी माला में पिरोया गया" काशीदास जी ने संलग्नतया गुरु सेवा करके मुक्ति लाभ उठाया। चूहड़दास जी ने पंजाब में जाकर गुरु बाणी का प्रचार किया। राजा रणजीतसिंह इनके श्रद्धालु भक्त थे। मनसादास जी इस पंथ के प्रथम महन्त बने तब से यह महन्त प्रणाली धामपुर में इस प्रकार चली आ रही है:—

मनसादास जी → धर्मदास → प्रेमदास → मजलसदास → माधोदास → बरनदास ↓
↓ हीरादास ← श्यामदास ← निहालदास ← स्वरूपदास ← भजनदास ← पूरनदास
जगदीशानन्द → दयाप्रकाश → प्रीतमदास (वर्तमान महन्त)

इस समय महात्मा कृष्णदास जी इस भेष के अनुयायी एक अनुभवी एवं विरक्त सन्त हैं। पानपदास मृत्यु के पश्चात पंजाब में अवतरित हुए थे और ठाकुर परमहंस के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। आपने यह जन्म कुछ भक्तों की इच्छा पूर्ति के लिए लिया था अतः इस रूप में वह अधिक समय तक संसार में नहीं रहे।

संक्षेप्तः पानपदास जी एक निर्गुण, निराकारी, वेदान्ती, सत्य के उपासक संत थे। आप उदारता, दया, क्षमा व नम्रता के भण्डार थे। आपके मन में ऊंच नीच जाति पांति के भाव न थे। निर्भीक सुधारक, पाखण्ड के विरोधी, सत्यवक्ता, आत्म-ज्ञानी व जीवन-मुक्त थे। शास्त्र धर्म की अपेक्षा हृदय धर्म को महत्व देते थे। भगवत प्रेम आपके जीवन का आधार था बाह्य आडम्बर का नाम भक्ति नहीं है। भक्ति हृदय की गूढ़ भावना है, भक्त के चित्त का तार प्रभु में अविच्छिन्न रूप से लगा रहता है जैसे चकोर का चन्द्रमा में:—

लौ लागी छूटे नहीं, जैसे चितवन चन्द्र चकोर।
कहै पानप गुरु भेदी मिले, ऐसे चितावै प्रेम की ओर॥

पानपदास जी सत्संग के अवसर पर केवल अपने अनुभवों का ही वर्णन करते थे। आपने अपने अन्तर में प्रभु के दर्शन पाये और उसी के फलस्वरूप आपके मुख से ब्रह्म-वाणी उत्पन्न हुई "कहै पानप प्रभु रंग राचै, गावै अकथ कहानी" आपकी यह अकथ कहानी एक मधुर ग्रन्थ के रूप में अनेक मुमुक्षों को प्रेम पन्थ, व ज्ञान का मार्ग दिखला रही है मन के निग्रह पर आपने विशेष बल दिया है क्योंकि मन के संकल्पों में ही माया का सुदृढ़ आसन है। और मन ही भांति भांति की रचना रच कर विषयों में फंसाता है। अतः "मन में आसन मांड कर, मन माहि समावै" अर्थात् मन को आधीन करके उसकी वृत्तियों को अन्तर मुखी बनाना चाहिए। यह सुरत साधन क्रियायें भगवत् कृपा से गुरु द्वारा प्राप्त होती हैं। गुरु के मुख से निकले उपदेशों में एक असीम शक्ति एवं स्फूर्ति होती है कि असम्भव भी सम्भव बन जाता है। प्रभु ऐसे संतों का संग सर्वदा सुलभ करें। गुरु ही केवट बन कर संसार सागर से पार कर सकते हैं, गुरु के चरणों में नमस्कार है:—

"गुरु साक्षात पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः"।

महन्त प्रीतम दास जी
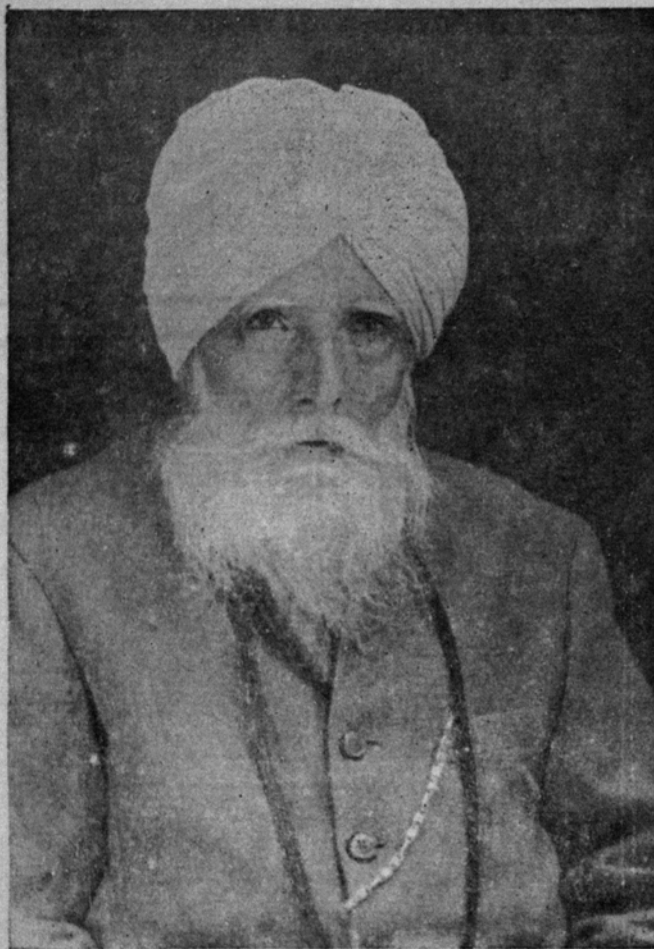
महन्त सोई जो मैं को हत्ते !
आठों पहर हरि चरणों रत्ते !!

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी भगतीराम जी सहाय, श्री स्वामी शान्तदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या प्रथम वाणी

स्तुति

पतित पावन परम-पिता परमात्मा के सन्मुख अपने हृदय के भावों को श्रद्धा, भक्ति व प्रेम सहित रखने को स्तुति कहते हैं। प्रभु के यह गुण-गान संसार के प्रत्येक धर्म का आवश्यक अङ्ग है, जिससे मनुष्य सुख व शांति पाता है।

आत्मा के लिए प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य है, जितना शरीर के लिए भोजन। शरीर की आरोग्यता के लिए तो उपवास जरूरी हो जाता है किन्तु प्रार्थना रूपी भोजन का त्याग किसी भी प्रकार हितकर नहीं है। काम, क्रोध, राग, द्वेष इन मानसिक विकारों पर जय पाने के लिए और परमात्मा में प्रेम बढ़ाने के लिए आत्म-ज्ञान का होना अति आवश्यक है। उसी के हेतु पानपदास जी इस प्रकार स्तुति रचते हैं:—

हे प्रभु तुम सर्व-व्यापी हो, सब चराचर में रम रहे हो। "जित देखूं तित तुम ही दीखो" तुम कृपालु मेरे हृदय में भी बसे हो। गुरू कृपा से आपका साक्षात्कार प्राप्त हुआ है। मैं कामी, कुटिल, कुचाल हूँ, कूढ़ कपटी हूं। एक भी गत-मत मुझ में नहीं हैं पर मैं तुम्हारी शरण आया हूं, तुम्हारे सिवाय मेरा और कोई सहारा नहीं है। तुमसे मेरे गुण-अवगुण छिपे नहीं हैं, मैं अन्धकूप में पड़ा हूँ, माया के बन्धनों से जकड़ा हूँ, तुम ही मेरे काढ़नहार हो।

"तू है साँचा साहब मेरा, अब कहां जाऊं कहाऊं मैं तेरा।"

मैं पतित हूँ; विषम मैल पहले जन्मों का तन-मन में भरा हुआ है किन्तु तुम्हारे नाम की अग्नि सब मैल जला देती है। तुमने नाम-रूपी जहाज से मेरे जैसे अनेक पतितों का उद्धार किया है। तुम्हारा नाम माया के बंधनों को ऐसे काटता है जैसे बन को कुल्हाड़ा। हे प्रभु, दीन-बन्धु! आपकी गति अगम अपार है, जिसका कथन मैं जीव बिचारा कैसे कर सकता हूँ।

"प्रभु के गुण हैं अगम अपारा, मैं गुण गाऊँ सो तो कौन बिचारा।"

यह शक्ति-प्रद स्तुति मन को पराजय करने वाली है, इसको निष्काम-भाव से तृषावन्त होकर हृदय से करनी चाहिए।

"हूं याचक मसकीन हूं ठाढ़ो दर तेरे।
दर्स दान मांगू सदा, और चाह न मेरे॥"

१—राग बिलावल

का बिन्ती तेरी करूं बनाय, का बिन्ती तेरी करूं बनाय।
अपरम-पार अगम गत तेरी, कहनी कथनी कही न जाय ॥टेक॥
हूँ तो कूड़[1] कपटी बहु-कामी, मोमें गत मत एको नाय।
तुम बिन ठौर और न कोई, राखो भावै देओ बहाय ॥१॥
आन देव सब मनो बिसारे, निसबासर प्रभु तुम्हरी चाह।
जित देखूँ तित् तुम्ही दीखो, लाग रह्यो तुम्हरी सरनाय ॥२॥
तुम सब योग्य होय सब तुम ते, तुम बिन दूजा मेरे कोई नाय।
तुमको लाज विरद[2] तेरो भारी, कोई न बूड़या[3] तेरो दास कहाय ॥३
साधू संगत मिल तुमको जाना, व्याप रह्यो सब जल-थल माहि।
कहै पानप समरथ[4] मेरो स्वामी, अब राखो चरणों लिपटाय ॥४॥

—:)०(:—

२—राग पूर्वी

यो मैं जाना एक तूही जी, यो मैं जाना एक तू ही।
तू ही राम तू ही रहमाना, दूजा कोई और नहीं ॥टेक॥
मैं कुछ नाहीं तू कुछ नाहीं, जो कुछ है सो है ही जी।
जगत लिपट रह्यो दुविधा सेती, बह्यो जात है योंही जी ॥१
हिन्दु में तो तूही तुर्क में, जल थल में हरि तूही जी।
जिन आपे में तुम पहचानें, सही फकीरी वोही जी ॥२
केते राम हुये जुग-जुग सूं, केते कृष्ण-कन्हाई जी।
उपज-उपज सब प्रलय हुए, तू हरि ज्यों का त्योंही जी ॥३
अन्तर धुन मन स्थिर राखे, तुम्हें पाये है सोई जी।
जप तप तीर्थ व्रत कर योह, नरक पड़े सब *लोई जी ॥४
जब इस मनसूं मनको खोजा, मनसूं सुरत मिलाई जी।
कहै पानप वह अलख अमूरत, सो मेरी दृष्टि समाई जी ॥५

---

*=लोग, १=मूर्ख, २=बखान, ३=डूबना, ४=समर्थ, योग्य।

३—राग कल्यान

मेरे जी गोपाल कृपा कीनी, मैं अचेत मेरी बुद्धि मलीनी। टेक।
कृपा कर बसयो मेरे द्वार, मैं बुद्धि-हीन न कियो विचार ॥१
सतगुरु आत्म-राम बतायो, घट-घट मध्य चहुँटै पायो ॥२
पांचों आतम खोज मिलाई, जोति निर्मली दृष्टि समाई ॥३
तिरखावंत' जान दियो निवास, चरण-कमल जिन कीन्हो बास॥४
षटदल कस-कस अंतर धाया, चित् चंचल स्थिर ठहराया ॥५
जन पै बल कियो पानपदास, जिन जग में शब्द कियो प्रकास॥६

४—राग कान्ड़ा

जाको प्रभु तुम्हरो बल होई, आप छुटावें छूटे सोई ॥टेक॥
माया के बन्धन अति गाढ़े, ए तेंतीस रहै नित ठाढ़े ॥१
बन्धन काटे नाम तुम्हारा, जैसें बन काटे कुल्हाड़ा ॥२
नाम निसान* घुरै नित आगे, सुनके धुन तेंतीसों भागे ॥३
कहै पानप प्रभु तुम्ही को तांकू, दूजे कौन भरोसा राखूं ॥४

---

* = दुन्दभी, १ = इच्छुक, तृषावन्त, प्यासा ।

५—राग सोरठ

प्रभु जी सांचो विरद तुम्हरो हो, यो कांचो[1] मतो हमारो हो ॥टेक॥
जे जन हृदय नाम रटत हैं, तिनके कारज सारे हो।
अनगिन हुये कहाँ लौं वरणू, सबको गवन[2] निवारो[3] हो ॥१
जप तप तीर्थ सब जग लागा, दान, पुन्य आचारो हो।
भूले दोष धनीको केहा, आतम कभी न सम्भाले हो ॥२
गोरक्ष, दत्त, भरथरी गोपी, जलंधर जोग सम्भाले हो।
नानक, पीपा, कान्ह, मुरारी, दास कबीर पुकारे हो ॥३
ड़िटकी[4] भक्ति भ्रम में कीन्हीं, तिनको भी प्रण पालो हो।
पानपदास करत प्रभु बिनती, मों मलीन-मति तारो हो ॥४

———

१=प्रसिद्ध, २=गमन, ३=हटाना, रोकना, ४=दृढ़।

६—राग भैरव

हम कीड़े कुम लाज का मोही, जाको विरद लाजेगा सोई ।।टेक।।
लज्जा तज मैं हरि-गुण गाँऊँ, अकल सहित चर्णों लिपटाऊँ ।
तू है सांचा साहब मेरा, अब कहां जाऊं कहांऊं मैं तेरा ।।१
गुरू कृपा सूं, तुमको जाना, अब कहा प्रभु तुम्हरो अहसाना ।
तू करता सब तेरो ही ख्याल, नाम दे तिस करो निहाल[५] ।।२
तुम्हरी सरन सुनी प्रभु गाढ़ी, मो पे जात नहीं अब छाड़ी ।
ज्यों जानै त्यों राख मुरारी, तू बखसिन्दा[६] चूक हमारी ।।३
काम क्रोध मद लोभ सतावै, इनते तुम्हरो नाम छुटावै ।
हूं तो जन्म-जन्म को चेरा, अबं के प्रण राखो प्रभु मेरा ।।४
शब्द-विवेकी आत्म–ज्ञाना, अकल कलासूं लह्यो ठिकाना ।
आत्म अकल अन्तर में लागै, तंत झंकार अनाहत जागै ।।५
सुनके धुन भाजा सब सांसा, पांचो चोर गये चढ़ बांसा ।
इड़ा पिंगला सुषमन आवै, आनन्द रूप बधाई गावै ।।६
तू करता तोसे सब होई, तुम बिन दूजा और न कोई ।
जहां-जहां संत कसौटी[७] काया, तहां-तहां देह धरै धर-धाया ।।७
देह गृह नहीं रूप न रेखा, क्या कोई तुम्हरो करे विवेका ।
कहै पानप मैं जीव विचारा, तू करता सब करने हारा ।।८

५=सुखी, आनन्दित, ६=महादानी, क्षमा करने वाला, ७=परखना ।

७—राग बिलावल

अपने को पन[८] आप करे, हरि अपने को पन आप करे।
पलक समीप तजे नहीं प्रभु मेरा, जो जन हृदय नाम धरे ॥टेक॥
काम क्रोध की काया दीनी, तामे संजम अजब बनाया।
सकल निरंतर जानै जो कोई, घट-घट मध्य आप समाया ॥१
यो संसार भ्रम में भूला, सांचे की परतीत न लावै।
सांचा सहाब घट में तज के, दौड़-दौड़ आनन को धावै ॥२
जात-पात कुल नाहि बिचारे, नीच ऊंच की संक न आनै।
जो जन हृदय नाम रटत हैं, प्रभु-मेरा ताहि को मानै ॥३॥
अकल-कला षट-चक्र बेधे, सोधे नाभि कमल उघरे[९]।
मूल-द्वार डिट कर बाधे, बाय अपावन जानन दे ॥४॥
कर विचार पानप जन बोले, सतगुरु भेंटे खबर पड़े।
सत की संध बांध मन मनसा, दर्सन परसन कभी न टरे ॥५॥

८=प्रतिज्ञा, ९=खुले।

८—राग बिलावल

हूँ याचक[1] दरबार को पड़ो द्वार तुम्हारे,
हूं सकीम[2] द्वारे पड़ो अब टरत न टारे ।।टेंक।।
रीझ[3] करो प्रभु आपनी, मांगू नहीं माया ।
बड़े-बड़े मुनिजन, देवता, इन सब चुन खाया ।।१
रिधि[4] सिधि याचूं नहीं और मुक्ति ए चारो ।
नाम-दान मोहि दीजिये, यो रीझ हमारो ।।२।।
अष्टसिधि नवनिधि बापरों,[5] अपनी घर राखो ।
यो दुनिया को दीजिये, जग मांगत ताको ।।३।।
खोज बूझ के पाईयाँ, मेरे गुरू लखाया ।
नव खंड सुरत लगायके, गिरता पड़ता मैं आया ।।४।।
तू साहिब समर्थ है, कोई और न दूजा ।
सब ही बतावें तुझको, जाको मैं बूझा ।।५।।
हूँ याचक मिसकीन[6] हूँ, ठाड़ो दर तेरे ।
दरस-दान माँगू सदा और चाह न मेरे ।।६।।
दरस तुम्हारा सो लहै, सूरा ससि घर लावै ।
मनसा को सुलझायके, ले चरन चढ़ावै ।।७।।
त्रिबेनी के घाट पे, पांचों मसल्हैती[7] ।
इन परमोदें[8] ते जना, सुने अनहद ताँती ।।८।।
साधु संगत बड़े भाग सूं, कोई बिरला पावै ।
दोय अमिल मिलते नहीं, ले तिन्हें मिलावै ।।९।।
जन पानप की बिनती, सुनो मेरे अंतरयामी[9] ।
मोको नाहीं टारना,[10] मैं क्रोधी कामी ।।१०।।

—*—

१=भिक्षुक, २=प्रेमी, ३=चाह, ४=ऋद्धि, सम्पत्ति, ५=असहाय, ६=दास, ७=भीगना, ८=शुद्ध, नियमित, ९=मन की बात जानने वाला, १०=टालना, अलग करना

९—राग भैरो

महा मलीन अल्प मति मेरी, हूँ क्या जानूं प्रभु स्तुति तेरी ॥टेक॥
मेरे गुन अवगुण नहीं छानी[1], तुम सब जानो मेरे अंतरयामी ॥१
हूं गृह अंधकूप में पड़या, काढ़नहार तुम्ही मेरे कड़िहा[2] ॥२
योह उपजै, गुन गाऊं मैं तेरे. तन में लगे विकार घनेरे ॥३
काम, क्रोध, मद, लोभ, सतावें, बंध पड़े सुत पिता ही छुटावें ॥४
मात, पिता तुम, हम बालक तेरे, पुत्र बिगाड़े तो पिता हो नबेड़े ॥५
पुत्र अजान बिगाड़े काजा, पूत कपूत पिता हो को लाजा ॥६
नौका अटकी भव-जल माही, पार करो भावें देहो बहाई ॥७
हमरी नाव पड़ो मझधारा, खेवट[3] नाम उतारे पारा ॥८
सुरत धाय अतर में लागी, मनशा प्रेम उजाले पागी ॥९
पानपदास गए कुरबानी, तुम्हरी स्तुति गुरु सूं जानी ॥१०

१०—कान्डा

धन धन दीन दयाल हमारे ।
हूँ तो चूको जन्म-जन्म को, कर कृपा चरणों में डारे ॥टेक॥
हूँ तो पतित[4] अपत[5], तन सूं, लाग रहो हरि नाम सहारे ।
नाम जहाज़ डार दुनिया में, मोसे पतित अनेक उधारे[6] ॥१॥
विषम[7] मैल पहले जन्मों का, मेरे तन-मन भरे विकारे ।
तुमरो नाम अग्नि की चिनगी, लागत तनिक सब अघ जारे ॥२॥
जे जन भए नाम अधिकारी, तिनके कारज आप सवारे ।
राख लाय चर्ण अपने सूं, एक पलक नहीं कीने न्यारे ॥३॥
मानुष देह तिरन को दीनी, तिर न सके कोई योह संसारे ।
तुम्हें न दोष[8] भ्रम ए भूले, हृदय सू हरि चरन बिसारे ॥४॥
आदि-अंत जन को पन[9] कीना, भीड़ पड़े सब संत उबारे[10]।
कहै पानप साहब मेरा लोभी, चरनों राचे, तईजन प्यारे ॥५॥

१=ढके, २ केवट, कड़िहार ३=प्रकाश, ४=पापी, ५=भ्रष्ट ६=पार करना
७=कठोर, कठिन, ८=त्रुटि, ९=प्रण, १०=बचाना,

११—राग कल्याण

अब हम पंथ भक्ति को पायो ।
सब पंथ में बिसर गये, गुरु अगम को पंथ बतायो ॥टेक॥
गोरक्ष, दत्त, भरतरी, गोपी, पंथ गेह्यो निरधावे[1] ।
सोई गुरु ताका मैं चेला, वोह मोहि पंथ बतावे ॥१
नारद, पीपा, और कबीरा, का पथ नानक पहुंचा ।
मैं मैला, यो सब जग मैला, वे राम सुमर भए सूंचा ॥२
अष्टाबकर, जलंधर, फक्कर, कान्हा-दास, मुरारी ।
कौन पंथ चल, वे जाय पहुंचे, पंथ कहिये अति भारो ॥३
भर-भर दृष्टि अदेख देखे, अकल पुरुष प्रमोदे[2] ।
परम पुरुष सोई दर्सन पावै, निस दिन तन मन सोधे ॥४
संत अननत पहुंच गये चरनों, पाया पद निर्वाणा ।
कहै पानप सो गुरु पंथ बतावे, वा घर में मोहि जाना ॥५

१२—राग कल्याण

लखी न जाई हो, तेरी गत लखी न जाई हो ।
सब जग डोलै ढूंढ़ता, तुम व्यापक सर्व माहि हो ॥टेक॥
तुम रहो चौड़े चौंहटे, जहां धूप न छाईं हो ।
कोई सतगुरु का बालका, गया सुरत लगाई हो ॥१
तुम अंतर व्यापक होय रहै, तुमरे अंतर नाहिं हो ।
जिन सरना तुमरो, गह्यो, ताके भए सहाई हो ॥२
जाकू ठोड़ कही नहीं, ताहि ठोड़ बताई हो ।
सकल निरन्तर रम रहे, जन की ए सरनाई हो ॥३
मैं कामी, कुटिल कुचाल हूं, बहु विषय[3] कमाई हो ।
जन पानप की विनती, राखो चरण लगाई हो ॥४॥

१=निर्णय, निश्चय, निर्धार, २=हर्षित, ३= भोग विलास

१३—राग कल्याण

माधो जी मैं काकी सरणा।

अपनी बिरद निबाहो मेरे स्वामी, मेरे करम पे चित नहीं धरना।टेक

तुम बिन देव और नहीं दूजा, आन सरन यम फांसो में पड़ना ॥१।

काम, क्रोध, मद, लोभ की काया, किस विधि भव-जल पार उतरना।२

गहरी अकल दई मेरे सतगुरू, मन ले नाम द्वारे मरना ॥३

सरन पड़ो गावे जन पानप, भव-जल डूबत हाथ पकड़ना ॥४

१४—राग कल्याण

सतगुरु सिक्षा मैं आज्ञा मांनू[१], कैसे गुण गाऊं, गुण गाय न जानू[१]।टेक।

प्रभु के गुण हैं अगम अपारा, मैं गुण गाऊं सो तो कौन चिकारा[२] ।१

अपने गुण प्रभु आप ही गावें, जन के सीस बड़ाई लावें ॥२

विधना[३] रची बिघ्न[४] की काया, अलख पुरुष ताके मध्य समाया।३

सब जग कहै बिघ्न की देही, अलख पुरुष सो तो लखो न तेही ॥४

सो सक्ति युक्ति कलासा[५], सहज ही पांचों चढें अकासा ॥५

पाचों चोर होय उस ठांई, गगन चढ़ी पवन घर जांई ॥६

रंग महल में अजब तमासा, खिड़की खोल लखे कोई दासा ॥७

रोम रोम उचरै रंकारा, चतुर विवेकी करो विचारा ॥८

कहै पानप मैं ताको दासा, जाके घट में यो तत् प्रकासा ॥९

—:)o(:—

१=यश, २=सारङ्गी ३=प्रजापति, ब्रह्मा ४=बाधा, विघ्न, ५=काम साधने की विधि।

इति, ब्रह्म विद्या प्रथम बाणी

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या द्वितीय वाणी

आरती

आरती के अंग में पानपदास जी ने 'सुरत-शब्द-योग' क्रिया का वर्णन किया है। इस कायारूपी मंदिर में बिना तेल व बत्ती के ज्योति जगमगा रही है। बिना भेरी व शंख के अनहद नाद की गूंज हो रही है; बिना पुष्प व धूप के सुगन्ध फैली हुई है, वहां पवन चवँर ढुला रही है; बिना मूल व डार की लता पर फूल खिला है जो न कुम्हलाता है, न नष्ट होता है। संत जन यहां दसवें द्वार में शुद्ध हृदय से सुरत को लगाकर ध्यान मग्न रहते हैं।

दोऊ रवि-चन्द मिल गगन में झिल-मिलें, सीप स्वाति बिन झलक मोती।
पवन आरती करे प्रगट अचरज भया, काया पलट कग भये हंस गोती॥

मन सब वृतियों का राजा है, अति बलवान है। यही जीव के मोक्ष व बंधन का हेतु है। चित्त के चलाय संसार है और अचल किये मोक्ष है। मन के निरोध के लिए यह आरती सुलभ है जिसकी रीति इस प्रकार है:—

आसन को साधकर, अकल यानी बुद्धि को त्रिकुटी में लगावे, तब सुरत सुन्न में पहुँच कर अनहद नाद में तल्लीन हो जावेगी और दसवें द्वार में आत्म साक्षात्कार को प्राप्त होगी।

इस आरती के सब अधिकारी हैं, इससे सब विघ्न मिट जाते हैं, यम की त्रास नहीं होती और जीव आवागमन से रहित हो जाता है:—

"जुगत आरती सृष्टि तिरावे, जो जन कोई हृदय लौ लावे॥"

आरती प्रभात

१

ऐसी आरती समझ मन माहि कीजे, आतम खोज चित चरण दीजे ।टेक।
मुन्न लग तार अपार धुन उपजे, ब्रह्म-ज्ञानी कोई मर्म पावै ।
बिना कर तूर झंकार झंकत रहैं, भेद अभेद सतगुरु बतावै ।।१।।
गगन में थाल जहां झलक मुकुनाहला[१], झलक उजियार[२] चहुँदिसा सूझे।
दिष्ट[३] उल्टी धरे पवन आरती करे, ब्रह्म अरूप कोई संत पूजे ।।२।।
प्राग में पुरुष-सनमुख आरती रची, चंद और सूर दोऊ करत चौरी ।
निरति[४] को निरख जहा मुक्ति ठाढी रहै, अनहदा-शब्द बाजंत तूरी ।३
पहुप चुग तत्व जब मुग्न ले आईया, आत्म-देव की भेंट पूजा ।
दास-पानप बार-बार बल-बल भया, सकल में एक ही देव सूझा ।४।

२

सच्ची आरती दीन दयाल भावै, मंगला आरती संत गावै ।।टेक।।
काया से कोट[५] जोति[६] निर्मल बलें, तेल बाती नहीं अगन-आसा[७] ।
तासूं उजियार तिहू लोक में चांदना, सजै आरती जहाँ दास दासा ।।१
मूल बिन बेल जहां पहुप बिन बासना[८], भंवर जहां चार गुंजार जागी ।
धूप और दीप नैवेध[९] पांचों तंत की, निरति के निकट समाध लागी ।२
दोऊं रवि-चन्द मिल गगन में झिलमिले, सीप स्वाति बिना झलक मोती।
पवन आरती करे प्रगट अचरज भया, काया पलट कग भए हंस गोती ।३
नगारे भैर बिन घुरैं अनाहदा, द्वार दसवें एसी आरती होय ।
बंस कपड़ बिना अधर फरहरै धुजा, एक अलेख न दूसरा कोय।।४
देह बिन देवता काया बिन सेवता, गगन चढ़ पवन जहां च वंर ढोरें ।
दास-पानप कहैं संत आरती रची, मेघ बादर बिना गगन घोरें ।।५

१=मोती, २=उजाला, ३=दृष्टि, ४=आत्मा, ५=दुर्ग, महल ६=ज्योति, प्रकाश ७=मशाल, ८=गंध ९=प्रसाद,भोग

३

जित देखूं तित तूही तू, और न दूजा दृष्टि पड़े ।
गुरुगम सूं आतम लखपायो, पानपदास दण्डवत करै ॥ १

आरती सांय

१

करे न सुरत मन आरती, आतम सनमुख साज ।
खड़े कहो भावें बैठे कहो, यम पे बांधा जात ॥१
आठ पहर की आरती, एक पल बिसरै नाहिं ।
साहब सूं सनमुख रहो पानप, ते जन मुक्ति समाय ॥२
मन थिर रहे आरती सोय, मन में सुरत समावे कोय ।
कहै पानप आरती सही, और आरती सबही बही ॥३॥

———

२

संजम[1] आरती प्रभुजी को भावै, बिरला संत मरम कोई पावै ।।टेक।।
पेड़ डार बेली बिन मूला, एको फूल अधर में फूला ।।१
पहुप न बिनसे न कुमलाई, जल थल महि रह्यो समाई ।।२
सुरत निरन्तर प्रेम प्रकासा, हरि को चितवें हरि के दासा ।।३
कर बिन तूर झालरसी बाजें, परम पुरुष जहाँ आप बिराजें ।।४
पानपदास आरती गावै, सोच करे तेई मुक्ति पावै ।।५

३

प्रभु जी की आरती यह बिध कीजे,
हृदय धोय निर्मल कर लीजे ।।टेक।।
पहले अगम में अकल समोई, अनहद सबद संख धुनि होई ।१।
सुन्न ध्यान धरो ओंकारा, कर बिन झालर तत् झंकारा ।२।
काया देवल[2] आतम देवा, सुरत लगाय सांच कर सेवा ।३।
एसी आरती गमन नसावे, बहुर जीव भव-जल नहिं आवे ।४।
आरती गावे जन पानपदासा, सहज मिटे साधो यम की त्रासा[3] ।५।

४

जुगत आरती सृष्टि तिरावे, जो जन कोई हृदय लौ[4] लावे ।टेक।
जुगत आरती जो जन जाने, परमातम घट माहिं पहिचाने ।१।
रच परमातम परचा होई, आतम लख परमातम धोई[5] ।२।
मुकुताहल बरसें बहु भांति, जहां न सायर[6] सीप न स्वाति ।३।
पानप आरती करत विचार, जो समझे सोई भव-जल पार ।४।

१=संयुक्त, २=मंदिर, ३=भय, ४=लगन, ५=ध्यान, ६=समुद्र ।

५

ऐसी आरती कर मन मेरे, सकल विघ्न[1] मिट जायें हैं तेरे ॥टेक॥
पग बिन पंथ निकट चल जाई, बिन मुख रसना आरती गाई ॥१
सायर[2] सीप स्वाति[3] बिन मोती, तेल दिवे बिन निर्मल जोती ॥२
अकल कला गहो वह तत सूझे, चित मन अपनी बिरला बूझे ॥३
कहै पानप संतन को चेरा, यो आरती करे सतगुरु मेरा ॥४
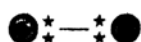
६

पार ब्रह्म जी की आरती कीजे, आतम खोज चरण चित दीजे ॥टेक॥
पांच तंत की बाती बनावै, मन दीपक मध्य जाय लगावै ॥१
ए गुण घृत सहज कर पूरे, सिरपे निर्मल जोति हजूरे ॥२
हर जन आरती यह बिध साजै, बिन ही मेघ गगन धुन गाजै ॥३
कहै पानप संतन को दासा, ए बिध पावे साधो चरण निवासा ॥४

—:०:—

७

सांची आरती प्रभु जी को प्यारी, जो जन करे सोई अधिकारी ।टेक।
सुरत अगम मैं आसन मांडे, सांसा सिंह सोई जन डांडे ॥१
चहुँ दिस में हरि वर्षा होई, परखत रहै पारसी सोई ॥२
गगन थाल जहां रवि ससि दोई, परम जोति तहां दर्सन होई ॥३
मुरली सी, ताल तम्बूरा से बाजें, कर बिन मुख बिन आरती साजें ।४
ए बिध आरती कर जन कोई, कहै पानप जीवन मुक्त होई ॥५

१ = बाधा, २ = समुद्र, ३ = पपीहा ।

८

दीन दयाल दरद दुख भंजन, अनाथन के पति नाथ।
पानप जन कोई-कोई जाने, रहता सदा संगात ॥१
जगत दुखी हरजन सुखी, सूझा गुरू का ज्ञान।
कहै पानप दुख बीसरे, पाय परम निधान ॥२

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फल पायंतं।
गुरु के चरणारबंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

इति, ब्रह्म विद्या द्वितीय वाणी।

* ॐ *

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या तृतीय बाणी

❀ नाम स्तोत्र ❀

श्री पानपदास जी ने नाम-स्तोत्र अंग में अपने उपदेशों को संक्षेप में रख दिया है इसको ग्रंथ का सार कहा जा सकता है:—

ईश्वर ओंकार स्वरूप है; वह पूर्ण है; सब चराचर में ओत-प्रोत है; जन्म रहित, अविनाशी, तेजोमय है; अपने आत्म-बल से अपनी प्रतिष्ठा का आधार है; माया व प्रकृति का रचने वाला है; मन व बुद्धि की पहुँच से बाहर है। जीव ईश्वर का अंश है। आत्मा ईश्वर का प्रकाश रूपी प्रतिबिम्ब है। संत इस ज्योति का ध्यान करके आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। जो मनुष्य इस आत्म रूपी ईश्वर को अपने अंतर में न खोज कर बनों में घूमते हैं, काया को त्रासते हैं, अन्य देवों में भ्रमते हैं, वह संशय युक्त हैं; मनुष्य योनी को वृथा गवांते हैं और आवागमन के दुख सहते रहते हैं।

गुरू दीक्षा व सत-संग से आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। संत इस परम तत्व को पाने के लिये सुरत-शब्द-योग का साधन करते हैं। ब्रह्मांडी मन ब्रह्मांड के हृदय में रहता है जिसको ओंकार कहते हैं इसका स्थान त्रिकुटी है यह ध्यान का प्रथम स्थान है यहां तीन नाड़ियां—इड़ा, पिंगला, सुषमना मिलती हैं। यह त्रिकुटी सुमेरू पर्वत है; इसकी चोटी को ब्रह्मरन्ध्र अथवा दसवां द्वार कहते हैं; यहां करोड़ो सूर्य व चन्द्रमा के सदृश प्रकाश फैला हुआ है और ब्रह्म की पहचान हो जाती है। सुमेरू पर्वत की चोटी पर दो स्थान सुन्न व महा सुन्न हैं, संतजन यहां "सोहं" जाप में ध्यान-मग्न हो जाते हैं और परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

इस सुरत-योग क्रिया द्वारा, काम, क्रोध, लोभ, मोह नष्ट हो जाते हैं, पांचों इन्द्रियां व मन दुर्बल बन जाते हैं अर्थात बुद्धि के आधीन हो जाते हैं। त्रिविध ताप-शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक-और तीनों गुण-सत, रज, तम-जल जाते हैं, सब संशय मिट जाते हैं और एक हरि में विश्वास दृढ़ हो जाता है। ऐसे योगी धैर्य का आसन लगाते हैं, संतोष रूपी भोजन करते हैं, दया रूपी वस्त्र पहनते हैं; फिर उनको माया नहीं व्यापती। संसार रूपी समुन्द्र को पार करने के लिये राम नाम की ध्वनी एक नौका है जिसको सुरत रूपी बांस से खेकर वह मोक्ष पाते हैं।

संत-जन अपनी अनुभव रूपी गुह्य वाणी संसार के हित के लिये कहते हैं। मत-संगी इस वाणी का मनन करके अपने जीवन को ऊंचा उठाते हैं। संसारी पुरुष इसकी अवहेलना करते हैं; इनकी आशा पाप व पुन्य कर्मों में लगी रहती है। पुन्य कर्मों से श्रेष्ट योनियां व पाप कर्मों से नीच योनियां मिलती हैं क्योंकि दोनों प्रकार के कर्म फल दायक हैं और फल बन्धन का हेतु है। अतः कर्म निष्काम होना चाहिए। आत्म-ज्ञान अभ्यास व वैराग्य द्वारा प्राप्य है; केवल शास्त्रों को पढ़ने और देवताओं की पूजा में लगे रहना, समय को नष्ट करना है। वेद कर्म मार्ग (प्रवृति) का उपदेश करते हैं और सन्यासी वैराग्य (निवृति) का। संतों का मत है कि सुरत साधन द्वारा (कर्म) आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए और पार ब्रह्म में सर्वदा लीन (संयास) रहना चाहिए। कर्म-योग व संयास आत्म-ज्ञान के दो पहलू हैं। और एक दूसरे के पूरक हैं। कर्मयोगी, फल आसक्ती रहित व भगवत परायण हुआ अनंत कर्म करता है और सन्यासी अकर्ता की दशा को प्राप्त हुआ अपने आत्म-बल से निरन्तर संसार का कल्याण करता रहता है। दोनों को कर्म का बन्धन नहीं होता और दोनों अपनी आत्मा में ही मग्न रहते हैं।

ओं अखड मंडलं चिरा-चित्तं[1] , अगम अगोचर अजावनं[2] ।
अकाल[3] - मूरतं, तस्यातं[4] निज आसनं[5] ॥१॥
जोतस्य जोती[6] स्वरूप, ज्योतं धरन्तं साधुवा धारनं[7] ।
तस्य दर्शनं सत्य सत्यं, कोटिक जीव उधारतं[8] ॥२॥
भ्रमन्त सर्व लोकानां, एवं तत्व विसारकं ।
जन्म रतन बहुरो न पावते, तस्य आसा भ्रम भूतं ॥३॥

ईश्वर ओंकार वाच्य है, वोही पूर्ण है, सर्वज्ञ है, उससे बाहर किसी भी पदार्थ की स्थिति नहीं है फिर भी ईश्वर इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता है, मन बुद्धि की पहुँच से बाहर है, जन्म-रहित, अविनाशी है और स्वयं ही अपना आधार है। प्रकाशों का भी प्रकाश है जिस प्रकाश का साधु-जन अवलंबन लेकर चिन्तन करते हैं। इस ज्योति का साक्षातकार वास्तविक सत्य है, जीवों को मुक्ति प्रद है। ऐसे आत्म-ज्ञान रूपी सत्य को भूल कर मनुष्य संदेह में भ्रमता रहता है और बहुमूल्य मनुष्य योनी को व्यर्थ गवाता है। यह मनुष्य-योनी बार-बार प्राप्य नहीं है इसकी आशा करना भ्रम है।

God is denoted by the word Om. He is Perfect, and Infinite. Being beyond the ken of mind and intellect, he is not realizable by the senses. He is unborn, immortal, and self existant. He is the light of all lights, holding upon which saints meditate. The vision of the this light-Atma-Gyan-is the Truth that liberates innumerable souls Man abandoning this Rality is led astray and he wastes his life which is precious and rare. To expect human birth again and again is delusion.

—:o:—

१=असीम-ज्ञान, सर्वज्ञ, २=जन्म रहित, ३=अविनाशी, ४=ईश्वर ५=आधार
६=ज्योति, प्रकाश, ७=चिन्तन, ८=मुक्ति देना।

आन देवो स भ्रमनं, न चिन्हंते आत्मा देवं।
सन्मुखं सत्य सत्यं उजासं[1] ,व्यापक तस्य तनोतनं ॥४॥

मनुष्य अन्य देवताओं के चक्र में घूमता रहता है, अपने आत्म-देव को नहीं पहचानता। आत्म-देव के सिवाय और देवता भ्रम हैं। यह आत्म-देव प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित है। यह ही सत्य है, शरीर में व्याप्त है। अतः शरीर में ही आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए।

Man is bewildered among the gods. He beholds not his 'Self' which is pervading the body and is an absoluteTruth shining within.

—§—

हर हितकारी[2] साधु-जनं, सत्-संग तृषावंतं[3]।
तस्या तत्व उपदेशं, चरण पदारथ पायतं ॥५॥

साधु लोग भगवान के प्रेमी भक्त होते हैं; वह सदैव सत्-संग के इच्छुक रहते हैं; सत्-संग से उनको ज्ञान प्राप्त होता है और वह भगवान के चरणों को अथवा भगवान की समीपता को पाते हैं।

Saints are the devotees of God. They are ever desirous of the company of sages and scriptures. Through Satasang they derive knowledge and wisdom and thereby reach the Supreme.

●⁑—⁑●
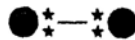
वासुदेवस्य वसंतं[4] देहा, पावंते गुरू उपदेशतं।
देवा आत्म परिपूर्णं, घट-घट मध्य प्रवेशतं ॥६
साधु जनां ससुर्त सेवतं[5] , परम तत्व प्रकासतं।
एवं तत्व जाणं तस्य, सेवंतं चरण निवासतं ॥७॥

१=प्रकाशित, २=भक्त, ३=अभिलाषी ४=निवास, ५=साधन, ।

ईश्वर का निवास शरीर में है वह गुरू उपदेश द्वारा जाना जाता है। आत्म-देव सब भूतों में पूर्ण रूप से व्याप्त है संत जन सुरत द्वारा साधन करते हैं। जिससे उनको परम तत्व अथवा आत्मा का अनुभव होता है। आत्म-साक्षात्कार हो जाने पर उनको ईश्वर के चरणों में निवास मिलता है अर्थात आत्मा व परामत्मा की भिन्नता का भ्रम नष्ट हो जाता है।

God dwells in the body. He is realised through Guru's teachings. The devotees meditate by means of "Surat" (सुरत) and recognise Him to be the only reality permeating every heart.

तजंतं भ्रम भूतानां, एको हरि विश्वासतं।
धारनं धरन्तं तस्य एवं, पदवी परम प्राप्तं ॥८॥

एक भगवान में निष्ठा रखने से जीवों के शंमय मिट जाते हैं। इस मूल-तत्व का ध्यान करने से उनको परम पद की प्राप्ती होती है।

Persons who believe in one God have their doubts destroyed. They ever meditating on Him reach the highest Goal.

—:*:—

शुन्य क्षेत्रं अन्तरोभित्रं, देवो परम निवासतं।
तस्यात् न जानं निगमं, साधु जनं उपासतं ॥९॥
दसवें द्वारं ध्यानस्य धारं, अपरम पारो परषतं।
तस्य तेजं एवं फलं, रवि ससि कोटि प्रकासतं ॥१०॥
तत्व त्रिवेनी तीरस्य, गंगा जमुना सरस्वतं।
निसबासर करतं असनानं, पुनरपि[1] जन्मं न विन्दतः[2] ॥११॥
जोगास[3] जोगी जुगो[4] बंध[5], मन पवनो उर्ध धरं।
तस्य दर्शनं सन्मुखं, उपचारो[6] योगेश्वरं[7] ॥१२॥

१ = दोबारा, २ = विद्यते, होता है, ३ = योग सहित, ४ = निरन्तर, ५ = साधन करना, ६ = योगी, ७ = अनुरक्त रहना।

ब्रह्मांडी मन ब्रह्मांड के हृदय में रहता है, इसको वहां ओंकार कहते हैं। इसका स्थान त्रिकुटी है यह ध्यान का पहला स्थान है और गंगा जमुना, सरस्वती अर्थात इड़ा, पिंगला व सुषमना का संगम है, जहां योगी-जन नहा कर जन्म रहित हो जाते हैं।

यह त्रिकुटी सुमेरू पर्वत है इसकी चोटी का नाम ब्रह्मरन्ध्र है इसको दसवां द्वार भी कहते हैं। यहां का प्रकाश करोड़ों सूर्य, व चन्द्रमा के प्रकाश के समान है यहां ध्यान करने से पर-ब्रह्म की पहचान हो जाती है।

इस सुमेरू पर्वत की चोटी पर दो स्थान सुन्न व महा-सुन्न हैं। जहां पर-ब्रह्म निवास करते हैं। संत-जन यहां ध्यान मग्न हो जाते हैं और जीव हंस गति को प्राप्त हो जाता है। योगी अपने मन व प्राण को यहां रमाते हैं और परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, यही इनका साधन है।

सुरत आगाधं गगन मंडलं, रवि चन्द्रो निर्झर[1] झिरं[2]।
निरतन्त[3] हंस संग संगा, यह जुगत अजराजरं ॥१३॥
अजराजरं कामस्य क्रोधं, पंच इन्द्रियाँ क्षीणतं।
साधुजनां स नाम[4] आराघं अष्ट-जाम लौ[5] -लनितं ॥१४॥

सुरत को गगन मंडल (सुन्न) में, जहां सूर्य व चन्द्रमा का प्रकाश सदा फैला रहता है, स्थित करने से सुरत हंस में आसक्त हो जाती है अर्थात माया जो सुरत को घेरे रहती है नष्ट हो जाती है और सुरत शुद्ध व निर्मल बन जाती है।

इस सुरत योग से काम व क्रोध जो अति बलवान हैं नष्ट हो जाते हैं, पांचों इन्द्रियां दुर्बल बन जाती हैं; अर्थात बुद्धि के आधीन हो जाती हैं। साधु उस नाम (सोहं) का सुरत से जाप करते हैं और आठों पहर ध्यान मग्न रहते हैं।

१ = झरना, २ = बहना, ३ = निरत्त, आसक्त ४ = Soham ५ = ध्यान मग्न

"Surat" in Piṇd (lower part of the body) is intensely associated with "Maya" Drawn np to the void (सुन्न) where sun and moon emit fountain of light, it (Surat) otherwise invincible is rarified and gets united with "Hans" (हंस). Thereby mind is conquered, desire and anger vanish and the five senses come under the sway of reason. Yogis constantly chant "Soham" (सोहं) and ever remain absorbed therein.

—:)०(:—

संग सांई[1] उदक[2] सैनो[3] , जेहि प्रतीतो[4] परसतं[5] ।
तृदेवा न जानानां, तस्यात हरजन परखतं[6] ॥१५॥

भगवान सर्व भूतों में इस प्रकार व्याप्त है; जैसे नेत्रों में जल अर्थात जिस प्रकार आंसू आंखों में गुप्त रहते हैं और करुणा या प्रेम के कारण टपक पड़ते हैं उसी प्रकार भगवान हृदय में निवास करते हैं और भक्ति से प्रगट हो जाते हैं। ऐसे दृढ़ विश्वास से भगवान प्राप्त हो जाते हैं, अद्वितीय भाव नष्ट हो जाता है, तीन देव ब्रह्मा, विश्नु, महेश इस आत्म-ज्ञान से अनभिज्ञ हैं केवल हरि-भक्त ही इसका अनुभव करते हैं।

As are the tears in the eyes so pervades the Lord. Who believes thus, to him He is revealed. The three gods are ignorant of him, while the devotees realise Him.

रागो न द्वेषो, हर्षो न शोको, तस्या भवते[7] दर्शनं ।
आरान्धते[8] मूल मन्त्रं, तस्य बाहु[9] अकरण[10] करं ॥१६॥

१=ईश्वर, २=जल, =आंख, ४=विश्वास, ५=साक्षात्कार, ६=अनुभव, ७=होने पर, ८=साधना, ९=बल, १०=असम्भव कार्य सम्भव हो जाना।

मोह व द्रोह, सुख व दुःख आदि द्वन्द्व-रहित होने पर आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस आत्म-ज्ञान-मूल मन्त्र के बल से साधक के असम्भव कर्म सम्भव बन जाते हैं।

To be above pain and pleasure, attachment and aversion is to realise the Self. This Atma-Gyan (आत्म-ज्ञान) is the basic mantra the power of which enables the man to control the mind and senses– a task hard to accomplish.

●-:★:-●

त्रिकुटि संजम आदृष्टि दृष्ट, परम देवो प्रकाशतं।
तस्य तेज एवं फलं, संशय सर्व विनाशतं ॥१७॥

त्रिकुटी संगम पर अगोचर गोचर हो जाता है, जहां आत्म-देव दीप्ति-मान हैं। इस तेज का यह फल है कि सब संशय मिट जाते हैं और ज्ञात हो जाता है कि इस शरीर में ही भगवान का वास है।

In Trikuti "त्रिकुटि" (the centre of the eye brows) the unmanifest manifests. There is the radiance of the Lord. The effect of this magnificence is that the doubts are removed and it is comprehended that the Lord resides within.
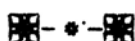
-•-

भव सागर तिरं नामस्य नौका, हर-हर धुनी उचारतं।
तस्य पेलं सुरत बंसं, ते जीव भव-जल पारकं ॥१८॥

संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये भगवत नाम की ध्वनि एक नौका हैं, जिसको सुरत रूपी बांस से खेकर जीव पार हो जाता है। अर्थात सुरत से जो राम नाम रटते हैं वह मोक्ष पाते हैं।

God's name is the boat to cross the ocean of life. Who row this boat with the oar of Surata, they cross the ocean i. e. who chant Ram-nam by Surata, they get salvation.

निरंजनं[1] निराकारं[2], आकारां[3] स निरन्तरं[4]।
तस्यात् साधुवा विलमन्ते[5], सुनत अनाहद जंतरं ॥१६॥

तेजोमय ब्रह्म सर्वदा अव्यक्त व व्यक्त है। साधु-जन उस ब्रह्म में रमते हैं और अनहद-नाद सुनते हैं। अर्थात अनहद-नाद जो पर-ब्रह्म से उत्पन्न हुआ शब्द है उसको सुनकर ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं।

The Lord is both manifest and unmanifest. Sages merge themselves in Him and hearken the self-originated sound called Anhad 'अनहद'
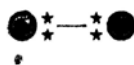
शब्दस्य शब्दो नमस्कारं, वर्ण[7] वर्णों[8] न जायतं।
न जानानां संसारो तस्यं, दर्शनं संत समायकं ॥२०॥

हे सत पुरुष! आप शब्द के भी शब्द हैं अर्थात आप ब्रह्मांड के भी कारण हैं; आपको प्रणाम है। शब्दों द्वारा आपका बखान सम्भव नहीं है। आप मन व बुद्धि की पहुँच से बाहर हैं। अतः संसारी जन आपको नहीं जानते; केवल संत ही आपका दर्शन पाते हैं।

Salute to Thee O Lord! Thou art the first cause of Sabda 'शब्द' Ye are not describable. Thou art beyond the mind and reason and so the world know ye not; only the saints have thy vision.

—:०:—

१=तेजोमय, २=अव्यक्त, ३=व्यक्त, ४=सर्वदा, ५=रमन करना ६=नाद, ७=अक्षर, ८=बखान, ९=प्राप्त करना।

संगात-संगो[10] अंगात-अंगो[11], रंगात-रंगो[12] नर[13] गतम्[14] ।
अरूप रूपं रूपं अनुपं, मम भक्तास दरसतं[15] ॥२१॥
पर-ब्रह्म निकटं न स्या प्रतीतं, पाहन सेवा चित्त धरं ।
जीवस्य गलो जमो फंदं, जुरा मरण फांसी सहंतं ॥२२॥

God is Omni-present and pervades all. He is both manifest and unmanifest. His manifest form is marvellous. Devotees recognise Him. Common-man realises Him not, instead he fixes his faith upon idol worship. The result is that the Angel of Death hold-him up and he is tortured.

१० = सबके साथ, ११ = सब अंगो मे, १२ = सब रंगों में, १३ = मनुष्य, १४ = रमना १५ = दर्शन ।

भाषन्त साधुवा अगाध वाणी[1], कथितं परमार्थ हितं ।
सत संगी विवेक[2] करनं त्याज्ञं संसारो मतं ॥२३॥
गृह तजन्तं बनोवास सेवन्तं, जन्म अकारथ खोयतं ।
जारन्त[3] देहा गरीबं, जन्म-जन्मं तस्य रोयतं ॥२४॥
गीता भाषन्त समीप ब्रह्मं, ना खोजन्ते मूर्खो नरो ।
एवं तत्वं विसारतं[4] तस्यं, जन्म-जन्मं जमो मरो ॥२५॥

संत-जन गुह्य-वाणी संसार के कल्याण के लिये कहते हैं। सत-संगी इस वाणी का मनन करते हैं; पर संसारी-पुरुष इसकी अवहेलना करते हैं। जो लोग आत्म-देव को अंतर में न चीन्ह कर, जंगलों में ढूंढते हैं। और गृहस्थ को त्याग कर शरीर को कष्ट देते हैं वह अपना जीवन नष्ट करते हैं और जन्म-जन्मान्तर रोते रहते हैं; सुख व शान्ति उनको नहीं मिलती। गीता ने ब्रह्म का वास अंतर में कहा है। अज्ञानी पुरुष अंतर में न खोजकर इस सार-गर्भित तत्व से विमुख रहते हैं और आवागमन के चक्र से छुटकारा नहीं पाते।

१ = गूढ़, गुह्य, २ = विचार, ३ = जलाना, ४ = भुलाकर

Sages speak sagaciously for the good of humanity. The righteous learn from it while the worldly-minded forsake it.Gita teaches Brahma 'ब्रह्म' to be within. The ignorant realise Him not, in-stead they abandon their hearths and homes; roam about in forests, torture their bodies, and waste their precious life. Thus deluded they ever bewail.

—:✱:—

जस्य आसा पाप पुन्नं, तस्य चौरासी भ्रमनं ।
ना बंधन्ते[1] संत संगो, दुखो तं[2] जन्मो जन्मनं ॥२६॥
तत्व न जानन्ते षट दर्शनं, न जानंते कोटि तेतीसतं ।
तस्य शिक्षा संसारो न जानं, आत्म देवो स प्रकटं ॥२७॥

जिस मनुष्य की आशा पाप कर्म व पुन्य कर्म में है वह चौरासी लाख योनियों के चक्र में पड़ा रहता है अर्थात पुन्य कर्म से श्रेष्ट योनियां व पाप कर्म से नीच योनियां मिलती रहती हैं। दोनों प्रकार के कर्म फल-दायक हैं और फल बन्धन का हेतु है। कर्म-कांडी पुरुष संतों का संग नहीं करते और न उनके सिद्धान्तों को मानते हैं। जिसमे यह लोग यज्ञ, तप में पड़ कर आत्म-ज्ञान का साधन नहीं करते और वह बहुत जन्मों तक दुख सहते हैं।

वास्तविक ज्ञान केवल आत्म-साक्षात्कार से ही प्राप्य है इस ज्ञान को छः दर्शन नहीं जानते हैं और न तैंतीस करोड़ देवता। आत्म-ज्ञान अभ्यास से मिलता है; शास्त्र पठन व देव पूजन में लगे रहने के कारण आत्म-देव के प्रत्यक्ष होने पर भी संसारी-जन उससे अनभिज्ञ रहते हैं।

१ = लगना, २ = सहना ।

Who put their faith in virtues and sins they go forth in innumerable wombs. They do not keep company with the saints and thus devoid of Atma-Gyan and bound by the fruit of actions, they bear agony birth affter birth..

The six Darshans know not the Atma nor know it the thirty three million of the shining ones, that is, Atma is revealed neither by the study of scriptures nor by the worship of gods but through communion with the Self. The world is ignorant of Him although He is omni-present.

धीरजं आसनं योग्यं धरन्ते, सन्तोष भोजनं करं ।
क्षमा स वसनं[1] तस्य ओटं[2] , माया झलो[3] न व्याप्तं ॥२८॥
राजस्य तमो सतोयं, त्रिविध[4] जीव जरायतं ।
तस्या पावन्ते चतुर्थ स्थानं, जमो न जीव सतायतं ॥२९॥

योगी जन धैर्य का आसन लगाते हैं; संतोष रूपी भोजन करते हैं, क्षमा रूपी वस्त्र पहनते हैं; जिसकी ओट से उनको माया की ज्वाला नहीं लगती है। अर्थात योगी जन, धैर्य, सन्तोष, और दया धारण करते हैं; जिसमे माया उनको नहीं व्याप्ती है । जब जीव के तीन गुण (१) सत; (२) रज, (३) तम जल जाते हैं। तब उसको चौथे स्थान की प्राप्ति होती है, जिस स्थिति में पहुंच कर वह आवागमन से रहित हो जाता है। क्योंकि वहां माया जिससे त्रिलोकी बनी है, नहीं पहुंच पाती ।

१=वस्त्र, २=रक्षा, ३=ज्वाला, ५= मनुष्य की चार अवस्थायें है (१) रजोगुणमयी जाग्रत (२) तमोगुणमयी-स्वप्न (३) सतोगुण-मयी सुसुप्ति (४) तुरया जिसको संतो ने आत्म अवस्था कहा है ।

The Yogi does not care about the posture, food and dress but observes patience, contentment and compassion and thus he is not charmed by Maya. He having burnt the three qualities intertia तमोगुण mobility (रजोगुण) and harmony (सतोगुण) attains the fourth goal where the angel of death torture him not.

मनो जीतं योग युक्ता, रिपु-वायू[1] रोकन्त मूल बंधं ।
षट-चक्र बेधन्तं बुद्धस्य मानवी, वास[2] स्वांस[3] सनो[4] सन्धं[5] ॥३०
सतो सन्धं पवन बन्धं, रवि शशि करत इकतरं[6] ।
जस्य स्थानं जोतस्य जोती, तस्य दर्शनं भवातिरं ॥ ३१
भवातिरं अजग[7] जरं, पंच इन्द्रिय विष तजन्तं ।
हर हर धुनि जिह्वा नासतं[8], एवं सत्यं[9] तत्त फलं ॥ ३२

मन को वश में रखने वाला योगी योग-युक्त कहलाता है । वह योगी मूलबंध क्रिया द्वारा अपान वायू को स्थिर करता है । मूलाधार-चक्र में कुण्डलीनी शक्ति विराजमान है । प्राणायाम से जागृत होकर यह शक्ति मेरुदण्ड के भीतर प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है, जहां प्रकाश दिखाई पड़ता है । इस लिए ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में छः चक्रों को शुद्ध करते हैं और अपान व प्राण वायू को ठीक रीति से निरोध करके उनको मिलाते हैं ।

इस प्राण व अपान वायू के मेल से शुद्धि व स्थिरता प्राप्त होती है इडा, पिंगला नाडियां सुषमना में लीन हो जाती हैं । फिर उस स्थान का जहां ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है दर्शन मिलता है; जिसके दर्शन से मुक्ति हो जाती है, मन का निग्रह हो जाता है, पांचों इन्द्रियों के विषय व काम, क्रोध, लोभादि छूट जाते हैं और राम-नाम धुन जिह्वा से न होकर स्वांस द्वारा स्वतः होती रहती है । इस योग साधन का ऐसा वास्तविक फल है ।

१=अपान वायू २=अपान, ३=प्राण, ४=ठीक प्रकार, ५=युक्त करना ६=इकट्ठा करना, ७=मन, ८=नहीं होता, ९=वास्तविक ।

The Yogi of the subdued mind is called the Harmonised. Through the practice of Moolband 'मूलबन्द' he controls his breath-the in coming and out going breaths are united and purified, Eda and Pingla merge in to one Sushumna — and the vision where shines the Light is obtained. He is thus liberated, his mind is curbed and Rama Nam vibrates instead of being chanted by the tongue. So true is the fruit of this practice.

—:)०(:—

प्रवृत उपदेशी चतुर्थ वेदा, निवृत्तं[1] औधु मते ।
तन मन खोजन्तं आत्मा पानप, पार ब्रह्म जोगी रते[2] ॥३३॥

चारों वेद कर्म-मार्ग का (प्रवृत्ति) उपदेश करते हैं। सन्यासी वैराग्य (निवृत्ति) का उपदेश देते हैं। पन्तु श्री पानप दास जी का मत है कि तन मन द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए और पार-ब्रह्म में सर्वदा लीन रहना चाहिए।

The Four Vedas teach action. Sanyasi's creed is Renunciation. But Panap Das ji teaches both action and renunciation when he says that a true yogi must search the Atma-in the body through the discipline of mind; and remain absorbod in the Eternal.

१=त्याग, २=लीन रहना।

गुरू प्रसादं पूर्ण-ब्रह्म दर्शनं[1] , पूर रह्यो भरपूरं[2] ।
आत्म सुर्त सेवन्तं[3] पानप, भई अविद्या दूरं ॥३४॥
ऊंच नोचं कस्य कथितं, पूर्ण ब्रह्म परि पूर्ण ।
भाव दुत्या नर्क गामी, ज्ञान हीनस्य कूड़नं[4] ॥३५॥

गुरू उपदेश से पर-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है वह ब्रह्म सर्व व्यापक है। इस पर-ब्रह्म-रूपी आत्मा का दर्शन करने से अज्ञान नष्ट हो जाता है। सर्व-व्यापक ब्रह्म को ऊंच या नीचे स्थान में वर्णन करना अज्ञान है। ऐसा विचार भ्रम में डाल देता है, संकल्प विकल्प उसके मन को चलायमान रखते हैं जिस से उसको शान्ति नहीं मिलती।

Through the Teachings of the Guru the Eternal is revealed which is self existentent, and pervades all. This self-realisation is possible by the practice of Surat-yoge which destroys ignorance.

The Braham is absolute and all pervading. How can He be assigned a place above high or down below? Such an idea bewilders the man and he remains perplexed.

—*-:-*—

ब्रह्मणो ब्रह्म पिछ्याणानां, जन्म धरन्ते सूद्रा ।
ब्रह्म कला[5] न जानानां, फिर फिर जाति[6] उद्रा[7] ॥३६
जन्म जन-मन्ते[8] सूद्रानां, शूद्र भवते मृतक गेहः ।
ब्रह्म सनातन[9] ब्राह्मणों, जस्या थीर मनोरथंः[10] ॥३७

१=उपदेश, २=सर्व-व्यापी, ३=साक्षात्कार, ४=अनभिज्ञ ५=प्रभुत्व, गुण
६=जाता है, ७=योनी, ८=जन्म लेना, ९=लीन रहना १०=कामना, इच्छा

काम, क्रोध, लोभ, पापं, मान अभमान मनोर्थं[७] ।
कुला ऊंचं नष्ट बुद्धि, तस्य नीच यथार्थं ॥३८
कुला नीच ब्रह्म-ज्ञानं, आराधं[८] परमात्मा ।
तस्य ऊचं जुगोवरनं[९], परम देवो चरा[१०] चितं[११] ॥३९

ब्राह्मण वही है जिनको ब्रह्म-ज्ञान है। जन्म से सब शूद्र हैं कर्म व ज्ञान के अनुसार वर्ण-व्यवस्था बनाई गई है। ब्राह्मण सदा ब्रह्म में लीन रहता है, उसका मन थीर व शान्त रहता है। जो ब्रह्म के प्रभुत्व व विभूति को नहीं जानता वह बारंबार जन्मता मरता है, शूद्र योनी को प्राप्त होता है जो मृत्यु समान है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मतसर, लालसा, जिस पुरुष में हैं, वह ऊँचे कुल में जन्म लेकर भी नष्ट बुद्धि होने के कारण वास्तव में नीच है; इसके विपरीत जो पुरुष नीच योनी में जन्म ले, पर हो ब्रह्म-ज्ञानी और परमात्मा का भक्त, वह वास्तव में ऊंचे वर्ण का है, क्योंकि उसके चित्त में हमेशा भगवान वास करते हैं।

Brahman is he who comprehends Braham. Man is born low; and then according to qualities and actions he is divided into four castes. Brahman is ever-united with Braham, and his mind is tranquil. He, who understands not the glory of Braham, takes birth again and again in the depressed womb— a state worse than death.

Man, full of passion, anger, greed, lust, vanity, pride, desire, and his uuderstanding depraved, is low though high born. Birth knows no caste. A man possesing Braham-gyan and absorbed in God is high, though born in low caste.

—:*:—

७ = लालच, ८ = भजना, ९ = वर्ण-व्यवस्था, १० = वास करना ११ = बुद्धि

दुखो सुखो एक नामं, आई गई न चिन्तते ।
सोहं सोहं अहं नित्यं, सो जोगी चरण बन्धते ॥४०

जो योगी दुःख-सुख में सम भाव रखता है, लाभ, हानि से अधीर नहीं होता है और जिसके अन्तर में सोहं जाप निरन्तर होता रहता है, वह ईश्वर के चरणों को प्राप्त कर लेता है ।

The yogi, for whom pain and pleasure are equal; who minds not gain and loss, and in the innerself of whom "Soham" is being constantly chanted, is united to the Supreme.

—:o:—

देहा परमात्मा अगम स्थानं, गुरू मन्त्र बुद्धि संयमं[१] ।
परमात्मा बुद्धि संयुक्तं[२] भवेत, जीव गता[३] परम दर्शन ॥४१

शरीर में परमात्मा का स्थान 'अगम' है गुरु-मन्त्र से बुद्धि शुद्ध होकर परमात्मा से जुड़ जाती है; और जीव को अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं ।

AGAM in the body is the seat of God. Guru-mantra harmonises reason and thereby Braham-gyan is gained and Jiva gets the vision of his "Atman"

१=शुद्ध, २ = जुड़ना, ३ = पाता है ।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फल पायंतं ।
गुरु के चरणारबिंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

● ॐ ●

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी भगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या चतुर्थ वाणी

संसार के सब कार्यों में अनुभवी गुरू की आवश्यकता होती है। फिर आध्यात्मिक साधनों की सफलता तो गुरू पर ही निर्भर है। जगत के पूर्ण भेद सतगुरू के हाथ हैं; हरि हृदय में स्थित हैं, पर गुरू बिना साक्षात्कार नहीं हो पाता, बिना गुरू मिले भ्रम नष्ट नहीं होता, यथार्थ रहस्य समझ में नहीं आता। जीव भवसागर के अथाह जल में पड़ा गोते खाता रहता है जब तक गुरू का शब्द मल्लाह बनकर नौका को पार न लगावे।

गुरू परमेश्वर एको जान,
गुरू मिल पड़ी प्रभु की पहचान।"

गुरूदेव प्रवीन हैं, अनन्त उनकी महिमा है, उनसे ही परम तत्व के रहस्य का पता चलता है, उनकी अमृत वाणी हृदय को पवित्र करती है; उनके संग से प्रभु में आसक्ति होती है, जन्म-जन्म के तिमिर मिटते हैं और प्रभु-प्राप्ति हो जाती है। अतः गुरू का स्थान ईश्वर से भी ऊंचा कहा गया है—

"गुरू कृपा-सूं तुमको जाना,
अब काहू प्रभु तुमरो अहसाना।"

परन्तु सद्गुरू का मिलना अति दुर्लभ है; वैसे तो गुरूओं की कोई कमी नहीं; लोभी, कपटी, अनेक कामी जन भेष बनाय दुकान लगा कर बैठे हैं; जो "आपन डूबें नरक में, चेला राखें मार"। यह कामिनी,

कांचन में आसक्त होते हैं, मान, यश, पूजा इनका ध्येय होता है; इनके कर्म पाखंडों से भरे होते हैं। "जो नर मारा गुणों ने, कहै पानप गुरू न होय" वास्तव में गुरू वह हैं जिनको आत्म-ज्ञान होता है। पानपदास जी ने गुरू पहिचान का वर्णन किया है:—

"सोई प्रमान, सुरज्ञान मनसा गहे, वही गुरुदेव जो मन्है जानै।
सूरत सूधी करे, निसाना नाक सुध, दोऊँ को जोड़, ले गगन तानै ॥१
गगन में सुन्न है, सुन्न में नीर है, नीर में निर्मल जोति पहचानै।
तुरत परचा लहै, देख अनभव कहै, चन्द और सूर घर एक आनै ॥२
आत्म-देव बिन भेव परगट रहै, वह तो है अगम नहीं निगम जानै।
पानपदास रंरकार में रम रहो, तत् झंकार सूँ रूचि मानै ॥३"

सतगुरू पग-पग पर सावधान करते हैं, कुपथ से बचाते हैं, त्याग और सदाचार सिखाते हैं, अपने आचरणों की पवित्रता के प्रभाव से शिष्य का हृदय शुद्ध और निर्मल करते हैं जिससे सब संशय दूर हो जाते हैं और मन आत्म-विभोर हो जाता है:—

औघट घाटी मनसा चढ़ी, यो मन बंधा बिन रसरी।
गुरू लखाया आत्म राम, पानप परस लह्यो बिसराम ॥

ऐसे गुरूजनों के हृदय में मद, मान, मोह नहीं होता; वह जल में कमल की भांति संसार में परमार्थ हेतु विचरते हैं; जिनकी शरण में जाकर जीव अपने स्वरूप को पहचानता है।

यह संत समागम दुर्लभ होने पर भी, तीव्र मुमुक्षु को अप्राप्त नहीं है। श्रद्धा सहित अन्वेषण करने से गुरू प्राप्ति हो सकती है। पर प्रथम अधिकारी बननां चाहिये। गुरू उपदेश पर दृढ़ता से चलना चाहिये। गुरू केवल मार्ग बताते हैं; उस पर चलना शिष्य का काम है। सच्चा गुरू-मुख बन कर, गुरू की वाणी को प्रमाण माने, और जीवन को गुरू आदेश अनुसार ढाले:—

जिस विधि सतगुरू मरा, यों चेला मर जाय।
तत् ठिकाने पहुँच है, धोका रहै न काय ॥

-:●★●:-

शब्दी

अगम अगोचर कहां है ? जीव कौन बिध[1] जाय।
कहै पानप सतगुरु सोई, देव जुगत बताय ॥१

मन स्थिर कैसे रहै ? सूरत थिर[2] कैसे होय ?
कहै पानप सतगुरू सोई, योह जुगत बतावे मोहि ॥२

पूर्ण भेद जगत में, पर हैं सतगुरू के हाथ।
कहै पानप सतगुरू बिना, सब जग अहला[3] जात ॥३

सतगु सोई जानिए, सब धोखा डारै खोय।
आत्म-राम बतावै प्रघट, लावै मनसा दर्सन होय ॥४

सतगुरू सो जो सूरत लखावै, पारब्रह्म पल माहिं दिखावै।
सूरत निरत ले अन्तर धरे, सतगुरू ले चेला तिरे ॥५

गुरू नहीं गूङ्गा बावरा, गुरू है परम सुजान[4]।
अलख-दर्स संसार न जानै, गुरु दर्सन परमान ॥६

गुण का मारा जग मरा, गुरू गुन मारै सोय।
जो नर मारा गुनों ने, कहैं पानप गुरू न होय ॥७

हरि हाज़िर आगे खड़ा, सब के देखन मांही।
कहै पानप सतगुरु बिना, है कोई पावै नाही ॥८

वस्तु सुगम, पर खोजी नाहिं, गुरू बिन अहला जाय।
आत्म प्रगट पानपा, ताको सेवै नाहि ॥९

बूड़ी[5] नाव मल्लाह बिन, दियो मल्लाह बिडार[6]।
कहै पानप वह गहरे पड़ी, किस बिध उतरै पार ॥१०

१=रीति, २=थीर, अचल, स्थिर, ३=व्यर्थ, नष्ट ४=प्रमान माननीय, ज्ञाता,
५=डूबा, ६=त्यागना।

गुरू का शब्द मल्लाह है, जो कोई सङ्ग गह लेह।
सुरत बली गहई[८] पानप, तुरत पार कर देह ॥११
सतगुरु मेरा वैद्य जात का, गठड़ी बांधो डोले।
ताही का वह दरद मिटावे, जो कोई वाकू टटोले ॥१२
सतगुरु मिले तो सोङ्गरत पावै, देखत लेह पिछान।
अकल[९] कला[१०] धरै तब पावै, पानप अचल थीर स्थान ॥१३
सतगुरू मिले तो हरि भेंटे, सतगुरु मिले सब भ्रम मेटे।
प्रगट आतमराम बतावै पानप, पलक बिछुड़ नहिं जावै ॥१४
संतो राम खोज कर पाया, सतगुरु के उपदेसा।
सबके सीस[१३] रहै निस-बासर[१४], सुरत लगाय जिन देखा।१५
अगम अगोचर सीस पर, मारग नक सुध जान।
सुरत सहित जिवड़ा चढ़ै, जन पानप करत बखान।१६
सहजै मन स्थिर रहै, जो अन्तर ध्यान धरै।
सुरत बसै नव-खंड पर पानप, एक पल नहीं टरै ॥१७
सुरत टरै नहीं एक पल, प्रगट दरस अपार।
कहै पानप सो दरस कर, आवागमन निवार[१५]॥१८
भेद-भेद सबही कहैं, भेदी बिना न भेद।
पानप दर्सन बुद्धि सूं, तू उलट कंवल को छेद ॥१९
अन्तर राचा[१६] सो सही, बाहर सब पाखंड।
कहै पानप गुरु शब्द बिन, ए भरै काल के दण्ड ॥२०

८=पकड़ते ही, ९=बुद्धि, पृथक, १०=विचार पूर्वक, १३=सिर, १४=रात-दिन
१५=हटाना, १६=रमना,

अन्तरगत राचा[17] रहै, बाहर जग की चाल।
कहै पानप ऐसे संत के, दर्शन होत निहाल[18] ॥२१
सतगुरु हैं तो तुझको क्या, तें सतगुरु गम[19] नहीं पाई।
चितवन उलट बसी चितवन में, जब सतगुरु जुगत बताई ॥२२
सुरत गुरु मन चेला, दोऊ मिले हरि मेला।
यह दोऊ जो मिलते नाहि, पानप हरि बिन अहला जाहि ॥२३
सुरत विलमै[20] नाम रटन सूं, और दूजा नहीं उपाय।
कहै पानप सतगुरु भेद बतावें, तू हृदय माहि बसाय ॥२३
मन चंचल सो गुरु-मुख[21] नाहिं, गुरु-मुख का मन थीर रहै।
अगम अगोचर मन थिर करै, कहै पानप गुरु-मुख भव-जल तिरै ।२४
गुरु-मुख को हरि सूझन लागै, गुरु-मुख सकल भ्रम कू त्यागै।
बाँध सुरत मन जीवता मरै, पानप गुरू मुख भव-जल तिरै॥२५
बहा समुद्र जात है, बूंद माहिं घर जाका।
उलट समुद्र बूंद में राखे, पानप चेला ताका ॥२६
सतगुरु की यौहि बात है, मारग दे बताय।
जो चेला चलता नहीं, किस बिध पहुँचा जाय ॥२७
जिस बिध सूं सतगुरु मरा, यों चेला मर जाय।
तत्[22] ठिकाने पहुँच है, धोका रहै न काय ॥२८
अपना मन समझाया नाहीं, चेले किये घनेरे।
कहै पानप सब्द विचारा नाहीं, ए पड़े काल के घेरे ॥२९
कहै पानप धोका खायगा, जो औरै धोका देह।
अपना राम चीन्हा नहीं घट में, और चिन्हावै केह ।३०

१७=लीन, १८=सुखी, आनन्दित १९=गति, २०=ठहरना, स्थिर होना
२१=दीक्षित, २२=ब्रह्म

ज्ञान-सुखमनी

गुरु की बानी नित प्रमान, गुरु की बानी पावै जान।
गुरु की बानी सुख-मन पावै, गुरु की बानी जो कोई धावै ॥ १
गुरु की बानी अगम अपार, गुरु की बानी जन्म निवारि[१]।
जो कोई गुरु की बानी पावै, पानप तापे बलबल[२] जावै ॥ २

●⁑—⁑●

झूलने
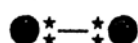
झांय झांय सरीर में होय रही, रोम रोम रटै ररंकार है जी।
एतो कवि कविसरी कर भूले, सतगुरु की सीख अपार है जी ॥१
सतगुरु की सीख हम भीख पाई, तन मन राखा जिसपे वार है जी।
सतगुरु की सीख आसान नहीं, कोई पावे सीस उतार है जी ॥२
जबसूं सतगुरु की सीख पाई, मनसा जाय लगी दसवें द्वार है जी।
गुरु गमसूं पवन ठहराये रही, ब्रह्मांड में तत् झंकार है जी ॥ ३
अजपा-जाप रटन तो हाय रही, सोहं सबद सूं तेज उच्चार[३] है जी
पानपदास कहते मुक्ति कैसे पावे, नहीं सबद का करते विचार है जी।४

१—राग-भैरव

ना जाना रे बन्दे तै ना जाना, शब्द गुरु का का ना जाना ।।टेक।।
गुरू का शब्द-भेद बिन पाये, जन्म-जन्म को ड़हकाना[४] ।।१
शब्द देह निरन्तर बास, बिन सतगुरु नही पहिचाना ॥२॥
राखे शब्दा-शब्द मिलाय, निर्मल ज्योति ताकी दृष्टि समाय ।३
पानप कहै शब्द प्रकास, शब्द उजाला तिहूँ-लोक निवास ।४

१=रोका, २=बलिहारी, ३=निकलता, ४=निराश रहना,